संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : संयुक्तांक १८ एवं १६ ● ०२ व ०६ मई २०२४ (गुरुवार) बैशाख शुक्लपक्ष प्रतिपदा सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

विश्व कल्याण के लिए वैदिक वांङ्मय की उपयोगिता

-डॉ. सुशील वर्मा

वैदिक वांङ्मय का महत्व तथा इसकी उपयोगिता इतनी ही प्राचीनतम है। जितनी की संस्कृत भाषा। मनुस्मृति के अनुसार वेद शास्त्र के वेत्ता को राज्य व्यवस्था सैन्य नीति तथा दण्डनीति एवं सामाजिक व राजनैतिक प्रशासन का भी पूर्ण ज्ञान होता है।

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्व भेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेद शास्त्र विदर्हति।। मनु. ६२/१००

प्रारम्भ काल में तो वेदों का अध्ययन होता रहा। ऋषि मुनि आचार्य जन आम जन तक उपदेश देते रहे। परन्तु मध्यकाल में वैदिक संहिता का अध्ययन इतना कम हो गया कि वेदों की उपयोगिता यज्ञयाग में मन्त्र पाठ तक सीमित कर दी गयी थी। वेद कुछ निहित लोगों तक ही सीमित होकर रह गया था।

कौत्स जैसे ऋषियों ने तो वेदों के मन्त्रों के अर्थों का निरर्थक तथा बता दिया "अनर्थका हि मन्त्राः" परन्तु यह तो आचार्य यास्क की श्रेष्ठता एवं बुद्धिमत्ता थी जिन्होंने अपने पक्ष रख कर निरूत्तर कर दिया। इतना ही नहीं उन्होंने तो सभी को शब्दों की उत्पत्ति व्याख्या द्वारा मन्त्रों के अर्थ तीन प्रकार से करने के आदेश दिये- १) आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक। सायण उव्वट महीधर आदि ने भी इन पद्धतियों का आश्रय लिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पूर्णतया इनकी नैतिकता पद्धति का पालन किया। मध्यकाल में तो "यज्ञार्थ वेदा अभिप्रवृताः अर्थात वेदों की रचना का उद्देश्य यज्ञ भूमि तक ही है", को मान्यता दी गयी। इन समस्त यज्ञों की विविध क्रियाओं के अनुरूप वेद मंत्र उपलब्ध न होने पर भी मन्त्रार्थ की उपेक्षा कर याज्ञिक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध जोड़े गए। और मन्त्रार्थ के विपरीत विनियोग प्रारम्भ हुआ। दयानन्द जैसे महान विद्वान ने शास्त्रीय आधार पर वेदांग, उपांग ब्राह्मणादि ग्रन्थों के प्रमाणों से वेद भाष्य कर आर्ष पद्धति के अनुसार नया आयाम दिया। तब से आज तक वैदिक वांङ्मय अपने प्रेरक तत्वों से समाजोत्थान का नया मार्ग दर्शा रहे हैं।

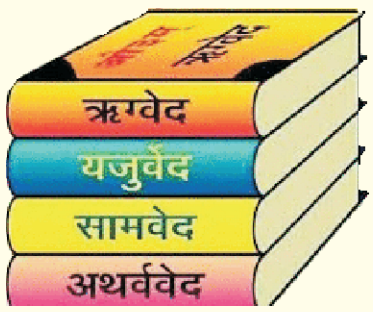

वेद मंत्रों में व्यक्त विचार हमारे दैनिक जीवन में कितने उपयोगी हैं तथा मानव मात्र के कल्याण के लिए आवश्यक व महत्वपूर्ण है इसका परिचय कराने में आधुनिक युग काल में श्रेय १९वीं सताब्दी के महान वेदत्त व चिंतक महर्षि दयानन्द को जाता है। स्वामी जी ने इन वेदों का कुछ सीमित पढ़ने पढ़ाने वाले व्यक्तियों के माध्यम से इसको व्यापक आयाम दिया और जन-जन तक देश के प्रबुद्ध व्यक्ति से लेकर एक जनसाधारण तक पहुंचाने का कार्य किया। वेद का स्वयं आदेश है कि ज्ञान मानव मात्र के लिए है, केवल एक व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग विशेष के लिए नहीं है। यह तो समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयोगी एवं अधिकृत है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।
मनु० २६/१२

मध्यकाल में तो तथा कथित ब्राह्मणों एवं विद्वानों का तो यह प्रचार था "स्त्री शूद्रों नाधीयताम्" इस लिए वेदों का अध्यापन करने वाले तो सीमित ही हो गये थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ही ऐसे प्रथम भाष्यकार थे जिन्होंने वेद को यज्ञ के मात्र कर्मकाण्ड से हटाकर उसकी प्रतियोगिता सामाजिक एवं मानसिक व्यवहार तक प्रतिपादित की। परिणाम स्वरूप नारी, शूद्रों तथा अन्य सभी को पढ़ने पढ़ाने का अधिकार दिलवाकर समाज के उत्थान के लिए वह कार्य किया जो चिरकाल से अपना अस्तित्व भुला चुके थे।

विश्वबन्धुत्व की भावना वेदों में यह भावना पूर्णतया स्पष्ट है कि सारा विश्व हमारे लिए हमारा कुटुम्ब है परिवार है। राष्ट्र भावना से भी ऊपर उठकर सम्पूर्ण विश्व

क्रमशः.....६ पर

वेदामृतम्

यं कुमार नवं रयम्, अचक्रं मनसाकृणोः।
एकेषं विश्वतः प्रांचम्, अपश्यन्नधितिष्ठसि।।

ऋ० १०.१३५.३

एक रथ है, जो बिना ही पहियों के चलता है और सदा नवीन रहता है। उसमें एक ईषा-दण्ड लगा हुआ है और वह चारों दिशाओं में जिधर चाहो उधर तीव्रता से चल सकता है। यह बिना पहियोंवाला, नित्य नवीन प्रतीत होनेवाला रथ मानव- शरीर है, मेरुदण्ड या पृष्ठवंश ही जिसका ईषादण्ड है। जीवात्मा रथी बनकर इस रथ पर आरूढ़ है। बुद्धि उसका सारथि है, मन लगाम है, इन्द्रियों घोड़े हैं।

हे कुमार ! हे आत्मन् ! तूने इस सुन्दर, नवीन, तीव्रगामी शरीर-रथ को पसन्द तो किया है, पर आश्चर्य है कि तू उसका सम्यक् उपयोग नहीं कर रहा। ऐसे अनुपम रथ पर बैठकर तो तू अबतक न जाने कहाँ-का-कहाँ पहुँच चुका होता! पर तू आँख मूंदकर बैठा हुआ है। तेरी हालत उस व्यक्ति जैसी है, जो किसी उत्कृष्ट रथ, बग्घी, मोटर या वायुयान में बैठा हो, पर उसे यह न मालूम हो कि जाना कहाँ है। ऐसी अवस्था में रथ और रथचालक कैसे ही उत्कृष्ट क्यों न हों, रथारोही या तो आगे बढ़ेगा ही नहीं या सारथि की इच्छानुसार किसी भी अभीष्ट या अनभीष्ट मार्ग पर चल पड़ेगा। इसमें सारथि का कुछ दोष नहीं है, मूढता है रथारोही की, जो ऐसे अद्वितीय रथ का स्वामी होते हुए भी किसी उत्तम स्थान पर जाने का संकल्प ही नहीं करता।

हे मानव ! जाग, अपने जीवन का उच्च लक्ष्य निर्धारित कर रथ को उधर ही मोड़। एक लक्ष्य पर पहुँच आगे का लक्ष्य बना, वहाँ पहुँच और भी आगे का लक्ष्य निश्चित कर आगे-ही-आगे बढ़ता चल। शत वर्ष के लिए तुझे यह शरीर-रथ मिला है। रथ को साफ-सुथरा रखेगा, तो और अधिक समय के लिए भी तुझे यह मिला रह सकता है। इसपर आँख बन्द करके (अपश्यन्) मत बैठ, गन्तव्य उद्देश्य की ओर तीव्रगति से रथ को ले-चलने के लिए सारथि को आदेश दे। अन्यथा, एक दिन आयेगा कि रथ तुझसे छिन जाएगा और तू पछताएगा कि अहो, प्रभु से ऐसा उत्कृष्ट रथ पाकर भी मैं वहीं खड़ा रहा। हे कुमार ! उबुद्ध हो, वेद की प्रेरणा को हृदयंगम कर।

साभार-वेदमंजरी

आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा में सभा प्रधान जी का स्वागत

स्वामी ब्रह्मानंद दण्डी जी द्वारा स्थापित आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा में उत्तर प्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा के यशस्वी प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा जी दिनांक ३० अप्रैल, २०२४ को पधारे, लखनऊ से आते हुए उन्होंने गुरुकुल आने की इच्छा व्यक्त की, आर्ष गुरुकुल के मंत्री प्रोफेसर विनय विद्यालंकार ने उन्हें सहर्ष गुरुकुल में पधारने का अनुरोध किया, गुरुकुल पहुंचने पर कार्यालय प्रमुख श्री अध्वरेश शर्मा ने स्वागत किया व गुरुकुल के प्राचार्य व कुलाधिपति डॉ० वागीश शर्मा ने भी उनका अभिनंदन किया।

प्रधान जी ने गुरुकुल की वर्तमान व्यवस्थाओं को देखकर अत्यंत हर्ष व्यक्त किया और यह कहा कि यह क्रांतिकारी परिवर्तन गुरुकुल के वर्तमान पदाधिकारियों के प्रयासों एवं निष्ठा से हुआ है। जिस गुरुकुल ने अपने स्थापना काल (१९४८ ई०)से हजारों स्नातकों का निर्माण किया वह गुरुकुल पिछले दशक में अत्यंत दयनीय स्थिति में पहुंच गया था जहां पर छात्र संख्या भी नगण्य थी, व्यवस्थाएं भी ध्वस्त थीं, उस समय भी मैं घूमते हुए एटा में आया था जब छात्रावास आदि सभी जर्जर स्थिति में पहुंच चुके थे। वर्तमान ट्रस्ट के प्रधान श्री योगराज अरोड़ा मंत्री प्रोफेसर विनय विद्यालंकार, गुरुकुल के यशस्वी आचार्य डॉ० वागीश शर्मा, गुरुकुल स्नातक परिषद के अध्यक्ष प्रो० कमलेश चौकशी सचिव डा० बृजेश गौतम, डा० अवनीश कुमार ने पूरे स्नातक मंडल को एकजुट कर गुरुकुलीय उन्नति का संकल्प लिया, जिसका प्रतिफल आज संचालित होते हुए गुरुकुल में दिखाई देता है। इस समय गुरुकुल में १०० विद्यार्थी अध्यनरत हैं,छह अध्यापक हैं, संरक्षक हैं, गेट पर गार्ड की समुचित व्यवस्था है, और संन्यासी विद्वानों का आगमन नियमित होना प्रारंभ हो गया है। यह बड़े हर्ष का विषय है (जैसा गुरुकुल के संचालकों ने अवगत कराया) कि इस वर्ष तीन चरणों में प्रवेश परीक्षा हुई जिसमें ५ अप्रैल २०२४ को ४५ बच्चों ने भाग लिया जिसमें से १८ बच्चे उत्तीर्ण हुए, १५ अप्रैल को पुनः ४० बच्चों ने प्रतिभाग किया जिसमें से १४ बच्चे उत्तीर्ण हुए और २५ अप्रैल को ५२ बच्चों ने भाग लिया जिसमें से १५ बच्चों को उत्तीर्ण किया गया। यह गुरुकुल के इतिहास में पहली बार है कि तीन चरणों में प्रवेश परीक्षा लेकर ही प्रवेश दिए गए । आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी ने गुरुकुल की वर्तमान व्यवस्थाओं पर अत्यंत हर्ष व्यक्त किया और अपनी सभा की ओर से यथोचित सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। गुरुकुल परिवार ने सभा प्रधान जी का आभार व्यक्त किया।

देवेन्द्रपाल वर्मा — प्रधान/संरक्षक
पंकज जायसवाल — मंत्री/सम्पादक
आर्य शिवशंकर वैश्य — प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्द यानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार का भाषण

यह गाय वन्ध्या गाय है। फिर वेद ने किस प्रयोजन से यह कहा कि वन्ध्या गाय राजा का खजाना है? इस गौ में शक्ति नहीं कि शत्रुओं का मुख बन्द कर सके, परन्तु राजा के खजाने में मुख बन्द करने की शक्ति है। इस गौ के पेट में वरुण घुसे हुए हैं तथा राजा के खजाने का अध्यक्ष भी ब्राह्मण ही हो सकता है। अब प्रश्न यह है कि उसे राजा का कोष न कह कर वन्ध्या गौ क्यों कहते हैं ? आइये, वेद के गौरव को देखिये कि उसमें कैसा विलक्षण, कितना गहरा उपदेश भरा हुआ है। वेद कहता है ''हे राजन् ! तुम्हारे हाथ में प्रजा का खजाना है परन्तु यह तुम्हारे पास धरोहर रूप में है। तुम इसके स्वामी नहीं।'' देखिये, वह गाय कैसी है ? लिखा है वह गाय वन्ध्या है। दूध नहीं देती है परन्तु सहस्रों दुहने वाले खड़े हैं। कैसी सुन्दर बातें हैं ! हे राजन् ! तुम सहस्रों प्रजाओं से टैक्स लेकर खजाना बनाते हो, परन्तु तुम्हारे लिये तो वह वन्ध्या गौ है। यदि तुम इसमें से हिस्सा लोगे तो तुम्हें वैसा ही पाप होगा जैसा गौ का अंग काटने से होता है (हर्षध्वनि और तालियां)। इससे उत्तम क्या उपदेश दिया जा सकता है? यह गौ राजा का खजाना है परन्तु हे राजन् ! तुम्हारे लिये नहीं। तुम्हारे लिये तो गौ वन्ध्या है। वन्ध्या गाय के अन्दर से दूध लेने का धर्म भी 'नहीं होता । अतः प्रजा का जो धन है, वह प्रजा के लिये है। आपको एक और छोटी सी बात सुना दूँ। उसी सूक्त में एक मन्त्र आता है और उसी मन्त्र के आधार पर कहा जाता है कि गोहत्या करनी चाहिये यह सिद्ध हो गया। इस मन्त्र में लिखा है कि ''हे गौ ! जो तेरा पकाने वाला है'' इत्यादि । अब यहां 'पकाने' का शब्द आ गया तो यही शब्द पकड़ लिया। परन्तु इसी मन्त्र में आगे लिखा है, ''डरो मत, हिफाजत करो।'' ये सब ऐसी ही बातें हैं जैसे कोई मिरासी बैंठा था, उससे मौलवी साहिब ने कहा- ''नमाज पढ़ो!'' उसने उत्तर दिया, कुरान शरीफ में नहीं लिखा है और निकाल कर भी दिखला दिया। उसमें लिखा था- ''मत पढ़ो कुरान शरीफ।'' जब मौलवी साहिब ने सारे वाक्य को पढ़ कर सुनाया- ''मत पढ़ो कुरान शरीफ जब नापाक हो।'' तब मिरासी ने कहा- ''तो क्या सम्पूर्ण कुरान मेरे ही लिये है?'' ये लोग यह नहीं आगे पढ़ते कि हे देवि ! डरो मत। तुम्हारी रक्षा करें।

वेद में यह बतलाया गया है कि राजा की रक्षा के लिये तीन प्रकार के अफसर होने चाहियें। सबसे पहिला 'समीता' वह है जो खजाने की आय को देखता है। वह देखता है, कि राज्य के खजाने में जो आता है उसमें एक पैसा भी छोटे को सता कर तो नहीं आता। अतः उसका नाम 'समीता'। दूसरा 'पकीता'। वह रुपये का हिसाव रखता है। अब ''पकाने'' का शब्द आया। उनसे पूछना चाहिये कि किसी दिन गुरु जी आपसे प्रसन्न हो जायँ और कहें कि तुम बड़े पक्के हो, तो क्या आप हांडी में पक गये? तो 'पकीता' देखता है कि जो कुछ आया, वह हिसाब में आया कि नहीं? यह देखना उसका धर्म है। तीसरा है 'नेता' जो गाइड करता है। मन्त्र में लिखा है कि वे तीनों ब्राह्मण हैं। जब यह बन्ध्या गौ उत्पन्न हुई तब संसार थर-थर कांप उठा परन्तु ब्राह्मण लोग नहीं कांपे। उन्हीने इस दौलत को चकनाचूर कर दिया। इसके दो लातें होती हैं। एक लात आने के समय कमर में देती है और एक लात विदा होते समय गुद्दी पर मारती है। इसी लिये इसका नाम दौलत है। अरे लोगो ! अपने को लक्ष्मीपात्र मत कहो । मदान्ध हाथियों को कमल की नाल से नहीं बांध सकते।

संसार में कोई बन्धन ऐसा नहीं था जिसने ऋषियों पर आक्रमण न किया हो। परन्तु ऋषि ब्राह्मणों की शक्ति की समानता कोई नहीं कर सका । ब्राह्मणों और क्षत्रियों की शक्तियों को देखिये। क्षत्रियों ने ऐसी शक्ति दिखलाई जिसको संसार याद करेगा। यह बिखरा हुआ भारतवर्ष सहस्रों टुकड़ों में बिखरा हुआ भारत, कृष्ण की चतुर नीति से एक सूत्र में बंधा हुआ दीख पड़ता है। (हर्षध्वनि) क्षत्रियों की शक्ति का यही नियम है। क्षत्रिय इस सिद्धान्त पर चलते हैं कि ''जैसा राजा होगा वैसी ही प्रजा होगी।'' परन्तु ब्राह्मणों का मन्त्र इससे भिन्न है। ''यदि राजा पापात्मा होगा तो धर्मात्मा प्रजा धर्म कर सकती है। पापी राजा, प्रजा पर एक क्षण भी राज्य नहीं कर सकता है।'' यह है ब्राह्मणशक्ति ! वे कहते हैं कि जिस दिन प्रजा धर्मात्मा होगी, उसी दिन राजा को धर्मात्मा हो कर चलना पड़ेगा। ५ हजार वर्ष पहिले मुरली के अन्दर वह बात नहीं थी, जो आज हजारों वर्षों के बाद उस ऋषि-वीणा में थी, जिसने भारत को गुंजायमान कर दिया। बोलो ऋषि दयानन्द की जय !

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

३६-अल्लाह के मार्ग में लड़ो उन से जो तुम से लड़ते हैं। मार डालो तुम उन को जहाँ पाओ, कतल से कुफ्र बुरा है। यहां तक उन से लड़ों कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का। उन्होंने जितनी जियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उन के साथ करो ।। मं० १। सि० २। सू० २। आ० १९०। १९१। १९२। १९३।।

(समीक्षक) जो कुरान में ऐसी बातें न होतीं तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न करते। और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उस को कुफ्र कहते है अर्थात् कुफ्र से कतल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं। अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उस को हम कतल करेंगे सो करते ही आये। मजहब पर लड़ते-लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गये। और उन का मन अन्य मत वालों पर अति कठोर रहता है। क्या चोरी का बदला चोरी है? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि चोरी करें क्या हम भी चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है। क्या कोई अज्ञानी हम को गालियां दे क्या हम भी उस को गाली देवें? यह बात न ईश्वर की और न ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्य की है।। ३६

३७-अल्लाह झगड़ा करने वाले को मित्र नहीं रखता ।। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो इस्लाम में प्रवेश करो।।

- मं० १। सि० २। सू० २। आ० २०५/२०८ ।।

(समीक्षक) जो झगड़ा करने वाले को खुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता ? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है? क्या मुसलमानों के मत में मिलने ही से खुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है सब संसार का ईश्वर नहीं। इस से यहां यह विदित होता है कि न कुरान ईश्वरकृत और न इस में कहा हुआ ईश्वर हो सकता है।। ३७।।

३८-खुदा जिसको चाहे अनन्त रिजक देवे ।।

-म० १। सि० २। सू० २। आ० २१२।।

(समीक्षक) क्या विना प्राप पुण्य के खुदा ऐसे ही रिजक देता है? फिर भलाई बुराई का करना एक सा ही हुआ। क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उस की इच्छा पर है। इस से धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई कोई इस कुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं।। ३८।।

३९-प्रश्न करते हैं तुझ से रजस्वला को कह वो अपवित्र हैं। पृथक् रहो ऋतु समय में उन के समीप मत जाओ जब तक कि वे पवित्र न हों। जब नहा लेवें उन के पास उस स्थान से जाओ खुदा ने आज्ञा दी। तुम्हारी बीवियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में।। तुम को अल्लाह लगब (बेकार, व्यर्थ) शपथ में नहीं पकड़ता ।।

-मं० १। सि० २। सू० २। आ० २२२। २२३। २२४।।

(समीक्षक) जो यह रजस्वला का स्पर्श संग न करना लिखा है वह अच्छी बात है। परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और जैसा जिस तरह से चाहो जाओ यह मनुष्यों को विषयी करने का कारण है। जो खुदा बेकार शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब झूठ बोलेंगे शपथ तोड़ेंगे। इस से खुदा झूठ का प्रवर्तक होगा।। ३९।।

५:१७ चउ, २३६४६२०२४, वच१५६८७: ४३६

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

मौलवी अब्दुल रहमान साहब न्यायाधीश से उदयपुर में शास्त्रार्थ ११ तथा १३ व १७ सितम्बर, १८८२ ई०

पंडित बृजनाथ जी शासक साइस्त मेवाड़ देश (जो उस समय इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे) ने कथन किया कि मैं उस समय स्वामी जी के मध्य दुभाषिया भी था। अर्बी के कठोर शब्दों का अर्थ स्वामी जी को और संस्कृत के कठिन शब्दों का अर्थ मौलवी को बता दिया करता था। यह शास्त्रार्थ मैंने उस समय अपने हाथ से लिखा जिसका मूल लेख पेंसिल का लिखा हुआ अभी तक विद्यमान है।

तीन मनुष्य इस शास्त्रार्थ के लिखने वाले थे। एक पंडित बृजनाथ जो शासक साइस्त, दूसरे मिर्जा मोहम्मद अली खां भूतपूर्व वकील वर्तमान सदस्य विधान सभा टोंक, तीसरे मुन्शी रामनारायण जी सरिश्तेदार, बागकलाँ सरकारी जिनमें से १ व ३ सज्जनों के मूल लेख हमको मिल गये हैं। और जिनका मौलवी साहब ने भी समर्थन किया है परन्तु उनकी बुद्धिमानी तथा नानदारी पर खेद है कि उस समय तो कोई युक्तियुक्त उत्तर न दे सके और पीछे से दिसम्बर, सन् १८८१ में निर्मूल और भूटे-फूटे उद्धरण देकर मूललेख के विरुद्ध कुछ का कुछ प्रकाशित करके अपनी धार्मिकता का चमत्कार दिखाया। इस शास्त्रार्थ के दिन सामान्य तथा विशेष हिन्दू तथा मुसलमान सुचने वालों को बहुत अधिकता थी यहाँ तक कि श्री वार वैकुण्ठवस्ती महाराजा सज्जनहि भी शास्त्रार्थ सुनने के लिए पधारे हुए थे।

''स्वामी दयानन्द जी महाराज और मौलवी अन्दुरेहमान साहब सुपरिटण्डैण्ट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर मेवाड़ देश के मध्य में होने वाला शास्त्रार्थ''

क्रमशः अगले अंक में...

साहसी आदर्श प्रचारक (स्वामी नित्यानंद सरस्वती)

(सन् १८८५ से २४ अप्रैल १९७७)

आर्य समाज के संकटमोचक की ४७वीं पुण्यतिथि पर शत शत नमन

-महाशय धर्मपाल शास्त्री

संगीत शिक्षा :-

बचपन में आपकी रुची इस प्रकार की थी कि जिस नई चीज को अच्छा समझते थे वही शीध्र ही सीख लेते थे। बीन सीखी और बांसुरी भी। खड़ताल पर तो आल्हा गाया ही करते थे।

एक बार अपनी ससुराल कुकड़ौला में आर्य समाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक चौधरी ईश्वर सिंह गहलोत आये। वहां पर उनका मनमोहक बाजा सुनकर मन में आया कि अन्य सब साजबाज व्यर्थ हैं, बजाने व सीखने की चीज तो यही है। चौधरी ईश्वर सिंह की गान विद्या ने भी आपको मंत्रमुग्ध कर दिया। उनकी मोहक कविता में सिद्धांतो का पुट व काव्य गंभीरता को देखकर आपकी विशेष श्रद्धा हो गई। चौधरी ईश्वर सिंह की प्रचार शैली में चित्रित देश भक्ति और स्वराज की प्रेरणा भी आकर्षण का एक मुख्य कारण था। इसी लिए आपने ईश्वर सिंह को अपना गुरु स्वीकार कर लिया और उनकी कविताएं सुनकर व पढ़कर खुद भी रचनाएं बनाने लगे।

अपने गुरु ईश्वर सिंह से आपने बाजा सिखाने की प्रार्थना कि परंतु उन्होने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि तुम्हारी अंगुलिया मोटी मोटी हैं तुम्हें बाजा बजाना नहीं आएगा। अपने दस साथियों के साथ मिलकर दिल्ली से नया बाजा खरीद कर लाए। क्योंकि रुची वाले किसी भी काम को सीखने में कोई कठिनाई नहीं समझते।

यह पूर्वजन्म के संस्कार का ही फल था। दूसरी बार उसी गांव में जब चौधरी ईश्वर सिंह जी आये तो बाजा बजाकर दिखलाया '' यह देखो आप क्या कहते थे मैने सीख लिया '' यह देखकर चौधरी ईश्वर सिंह जी बड़े प्रसन्न हुए ओर उत्साहवर्धन किया। बुपनियां गांव के मास्टर बालमुकुंद को भी आपने बाजा सिखाया।।

संकटमोचक की भूमिका (लोहारु सत्याग्रह) :-

ईक्कस (जींद) निवासी पत्रवाहक गंगानन्द आर्य जब लोहारु डाकखाने में आये तो उन्होने किसी साहसी समाज सुधारक के बारे में पुछा। लोगों ने ठाकुर भगवंत सिंह का नाम बताया। आर्य मिशनरी गंगानन्द सत्यार्थी ने ठाकुर साहब को आर्य समाज के रंग में रंग दिया। आपके मकान पर ही आर्य समाज का प्रचार कार्य शुरु हो गया। इसकी सूचना पाकर नवाब लोहारु ने ठाकुर साहब को नौकरी से हटा दिया। और सत्यार्थी जी का स्थानांतरण हांसी करवा दिया। दीनबंधु भगत फुल सिंह को इस समाचार का पता चला तब उन्होने कहा कि '' न्योनंद सिंह को बुलाओ''

भगत जी ने न्योनंद सिंह को पूरी घटना का पता लगाने के लिए हांसी भेजा। आप गए और पूरी घटना की जानकारी लेकर गुरुकुल भैंसवाल में लौटकर भगत जी को बताई। भगत जी ने आपको प्रचार के लिए लोहारु भेजा। उसी दिन आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से भेजे गये पंडित समरसिंह वेदालंकार श्री बलबीर झाबर सिंह जी की भजन मंडली सहित लोहारु आये। यह घटना १९४० की है। स्वामी जी के साथ मुंशीराम व जयसिंह आदि तीन बालक भी थे। स्वामी जी ने ठाकुर भगवंत आर्य को भगत जी की ओर से सांत्वना देते हुए उनका संदेह दिया की आप घबराएं नहीं।

नवाब के दीवान ने आकर कहा कि यहां प्रचार नहीं होगा। स्वामी जी ने कहा कि हम तो प्रचार के लिए ही आए हैं और प्रचार करके जाएगें। उन दिनों लोहारु में प्रचार करना मौत को निमंत्रण देना था। उससे पहले श्री धारी उपदेशक के साथ जो दुर्व्यवहार नवाब ने किया था वह दिल को कंपा देने वाला था। धन्य निर्भिक प्रचारक ! तेरे सामने ऋषि का वह दृढ़व्रतधारी रुप था। ''चाहे जोधपुर के लोग मेरी अंगुलियों की बत्ती बनाकर जला दें किंतु मैं वहां अवश्य जाकर सत्य उपदेश करूंगा'' दीवान के पुनः आने पर निम्नलिखित वार्तालाप हुआ।

दीवान :- गांव में प्रचार के लिए मत जाना, यहीं पर कर लो।

स्वामी जी :- हम गांव में ही प्रचार करने के लिए आये हैं।

दीवान :- अच्छा तो सूचना देते रहना कि कहां पर जाते हो ?

स्वामी जी :- खुद ही पता लगाना।

प्रचार यात्रा :-

सर्व प्रथम श्री भगवंत सिंह आर्य के द्वारा भेजे गए ऊंट से बारवास गांव में गए। वहां ठहरने का स्थान पूछा तो सब चुपचाप चले गए। नवाब का आतंक जो था। पहले वाली घटना से भयभीत थे। आर्योपदेशक धारी बारवास से ही पकड़े गये थे। पश्चात शिवालय में चले गए। वहां पर स्थित साधु ने कहा कि यहां जगह नहीं है। आपने कहा ''जगह तो है और ये तेरी ही बनाई हुई नहीं है''। आप बाहर आ गए। भजनियों को देखकर एक बार सारे गांव के आदमी इकट्ठे हो

गए परंतु थोड़ी देर में सभी वापिस चले गए और फिर कोई नहीं आया। न हि भोजनादि की व्यवस्था हो पाई। सायं संध्या का समय हो गया।

शिवालय से बाहर टीले पर बैठकर स्वामी जी आदि ने संध्या शुरू कर दी। मंत्रो की गुंजार सुनकर गांव के बालक आ गए। उन्होने पूछा - भजन करोगे ? आपने कहा कि हां, करेगें। तुम रोटी आदि ले आओ। बालक ले आए। भोजन किया और पुन : गांव में जाकर मेज व लालटेन मंगवाई श्री शिवनारायण जी ने लाकर दी। गांव में दो दिन प्रचार हुआ। यद्यपि भय के मारे लोगों ने रुची नहीं दिखाई और न ही अच्छी तरह से सुना। अधिकतर लोग गलियों में खाट बिछाकर सोने के बहाने सुनते रहे। पहले दिन प्रचार की समाप्ति पर एक सुबेदारनी ने गांव वालो को फटकारते हुए कहा कि '' तुम सारे प्रचार सुनकर चल पड़े, इन्हें रोटी तक नहीं दी। क्या तुमको नवाब खा जाता। कल मैं प्रचार करवाऊंगी। '' उन्होने खाट दुध आदि की व्यवस्था कर दी और गांव में ठहरा दिया। अगले दिन प्रचार सफलतापूर्वक हो गया। वीर महिला मुख्याध्यापक श्री रामसिंह आर्य की माता जी थी।

तदनंतर बिसलवास व गिगनाऊ में एक एक दिन प्रचार करके गांव सिंघानी में पहुंचे। वहां पर भी किसी ने रोटी पानी की व्यवस्था नहीं की। स्वामी जी ने स्वयं भोजन बनाया। ओर खाकर प्रचार किया। पश्चात पहाड़ी गांव में दो दिन प्रचार किया।

पहले दिन तो गांव के चौक में ही बैठे रहे। वहीं पर एक आदमी ने रोटी लाकर दी और लालटेन आदि का भी प्रबंध किया व प्रचार हुआ। अगले दिन एक नम्बरदार ने ठहराया और भोजनादि का प्रबंध किया। पहाड़ी में यज्ञोपवित संस्कार भी हुए। फिर छोटी चहड़ में तीन दिन प्रचार तथा यज्ञोपवित संस्कार हुए।

एक दिन बड़ी चहड़ में प्रचार हुआ। तत्पश्चात मंढोल शेरपुरा, गोकलपुरा व खोरड़ा आदि गांवो में प्रचार किया। स्वामी जी ने वहां पर १५-१६ गांवो में प्रचार किया।

सांग का विरोध :-

गंगाना के पास गढ़ी गांव में सांग हो रहा था। उसी समय गंगाना में आर्य समाज का उत्सव हो रहा था। स्वामी जी ने उपने उपदेश में कहा - अरे क्षत्रियों! तुम रोज आपस में लड़कर मरते हो। क्या तुम पापियों और बदमाशों को नहीं मार सकते? हमारा धर्म कहता है कि दुष्टों को मार डालो। प्रचार सुनकर जोश में एक क्षत्रिय सांग देखने वालो के साथ मिलकर जा बैठा और अवसर पाकर गोलियां दाग दी। तीन आदमी मारे गए। इस प्रकरण में चार आदमी पकड़े गए। श्री स्वामी जी महाराज से भी पुछताछ की गई। आपने ब्यान दिया की मैने यह कहा था की बदमाशी फैलाने वाले पापियों को मार दो। उपदेशकों का यह काम होता है। पकड़े गए चार आदमियों के विषय में जब आपसे पुछा गया कि यह चारों आदमी प्रचार सुनने वालो में थे ? स्वामी जी बोले में इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। इस प्रकरण में कोई ठोस सबूत न मिलने पर वकील की तार्किक युक्तियों के कारण केश खारिज हो गया और सब बरी कर दिए गए।

साभार-स्वामी नित्यानन्द जीवन चरित्र

महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि : 20 सितम्बर ''भाद्रपद शुक्लपक्ष नवमी'' एक भ्रामक और निराधार जन्मतिथि।

-आचार्य राहुलदेवः

अभी कुछ दिन पहले डा० ज्वलन्त शास्त्री जी का फोन आया था और उनका एक ज्ञापन, लेख भी आया था। जिसमें उन्होंने महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि पर परोपकारिणी सभा अजमेर में उनके और श्रीमान् आदित्य मुनि जी के मध्य में हुए शास्त्रार्थ की चर्चा की है। शास्त्रार्थ में यह सिद्ध करना था कि महर्षि दयानन्द की सटीक जन्मतिथि कौन सी है। उक्त शास्त्रार्थ परोपकारी मासिक पत्रिका में विस्तृत रुप से प्रकाशित भी हुआ है। जो आचार्य सत्यजित् मुनि जी के सयोजकत्व में संवाद के रुप में हुआ था। ज्ञातव्य हो कि श्रीमान् दार्शनेय लोकश जी के अनुसार महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि ''भाद्रपद शुक्ल नवमी संवत् १८८१ विक्रमी तदनुसार २० सितम्बर १८२५ ई. है। आदित्य मुनि भी इसी तिथि को प्रामाणिक मानते है। किन्तु डां ज्वलन्त शास्त्री के अनुसार महर्षि दयानन्द की प्रामाणिक जन्मतिथि फाल्गुन कृष्ण दशमी संवत् १८८१ विक्रमी, तदनुसार १२ फरवरी १८२५ ई. है। पीछले शास्त्रार्थ में आदित्य मुनि निरुत्तर हो गये थे और उन्होंने अपने पक्ष से शास्त्रार्थ के लिए श्रीमान् दार्शनेय लोकेश जी का नाम सुझाया था। परन्तु उसके बाद कोई शास्त्रार्थ आगे हो न सका। अभी वर्तमान समय में दार्शनेय लोकेश जी ने महर्षि दयानन्द के २०० वें जन्म पूर्ति पर फिर एक बार आर्य नेताओं को और विद्वानों को महर्षि दयानन्द की गलत जन्मतिथि मनाने का आरोप लगाया है। उनका मानना है कि केन्द्र सरकार और आर्यसमाज दोनों ही गलत मना रहें है। अस्तु!

हम आर्यों के लिए ऐसी चर्चा थोड़ी असहज करने वाली होती है कि हम लोग अपनी ही संस्था के संस्थापक तथा विश्व के अद्वितीय वेदवेत्ता और महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द की प्रामाणिक जन्मतिथि को लेकर असमंजस में हैं, जनसामान्य आर्यसमाज जैसी बौद्धिक संस्था से ऐसी आशा नहीं करता। उसको महर्षि दयानन्द की वास्तविक जन्मतिथि को न केवल जानना है अपितु उसे यह निश्चित करना है कि इस सम्बन्ध में विद्वानों के विचार एक हो। और सभी आर्य लोग उसी तिथियों में उत्साह से मनायें। मैंने भी अपने बाल्यकाल में अनेक स्थानों पर अनेक पुस्तकों पर १८२४ ई. यह अंकित हुआ देखा है। इसके आधार पर ही सरकार के रिकार्ड में १२ फरवरी १८२४ ई. ही अंकित हुआ है, परन्तु हाल ही के कुछ वर्षों में आर्यसमाज के विद्वान डा. ज्वलन्त शास्त्री जी ने ''महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्मतिथि'' नामक एक ऐसी पुस्तक (दस्तावेज) लिखी है। जिससे अब यह सभी के लिए निर्विवाद रुप से मानने योग्य है कि महर्षि दयानन्द का जन्म फाल्गुन कृष्ण दशमी संवत् १८८१ विक्रमी, तदनुसार १२ फरवरी सन् १८२५ ई. का है। और संवत् के आधार पर १८८१ पर तो कभी विवाद रहा ही नहीं क्योंकि स्वामी दयानन्द ने स्वयं लिखित आत्मचरित में संवत् १८८१ लिखा है।

किन्तु बात यह है कि फाल्गुन कृष्ण दशमी संवत् १८८१ विक्रमी, महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि है या श्रीमान् दार्शनेय लोकेश जी के अनुसार ऊहा की गई तिथि ''भाद्रपद शुक्ल नवमी'' संवत् १८८१ विक्रमी है, इसी बात पर निर्णय होना है। सन् १८२४ ई. नहीं है, सन् १८२५ ई. यह तो अब प्रमाणित हो चुका है।

श्रीमान् दार्शनेय लोकेश जी ने अपने द्वारा ऊहा की गई महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि को प्रामाणिक ठहराने के लिए जो तर्क दिए हैं। आइए उन तर्कों की प्रामाणिक और न्याय संगत समीक्षा करते हैं। हमारी समीक्षा का आधार भी महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित आत्म चरित और उनके द्वारा दिए गये पुना प्रवचन के व्याख्यान और उनके लिखित ग्रन्थ ही होंगे। और अन्य कोई जीवनी लिखने वाले प्रामाणिक विद्वानों के उद्धरण यदि दिये जायेंगे तो उसकी पृष्ठ संख्या और अध्याय आदि लिख देंगे।

२) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - आप सहित सभी विद्वानों ने एक ही प्रमुख गलती की है और वह यह कि जन्मतिथि की सोच को चैत्रीय या उत्तरभारतीय विक्रम संवत् के अनुसार आगे बढ़ाया है।

समीक्षा-आपका यह कहना है कि पं लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, पं देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय, पं घासीराम, पं भगवद्दत्त, प्रो भीमसेन शास्त्री, आचार्य चमूपति, पं युधिष्ठिर मीमांसक, भवानी लाल भारतीय, प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, डा. कुशल देव शास्त्री, डा रामप्रकाश, डा ज्वलन्त शास्त्री प्रभृति विद्वानों को जो पता न लग सका आपको पता लग गया। आपने अब तक महर्षि दयानन्द के जीवन पर कितना शोध, लिखित रुप में किया है? और महर्षि के ऐतिहासिक स्थलों पर भ्रमण करके कितनी ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त की है? यह नहीं बताया। आपने कहा है कि सभी विद्वानों ने चैत्रिय संवत् या उत्तर भारतीय संवत् मानकर इसे आगे बढाया है। क्या महर्षि दयानन्द ने संवत् १८८१ लिखते समय ये बताया है कि मेरे संवत् लिखने का तात्पर्य गुजराती संवत् से है? तब आपको कैसे पता लगा कि स्वामी दयानन्द ने (संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म हुआ यह लिखा है) तो यह गुजराती संवत् की बात है? महर्षि दयानन्द स्व लिखित आत्मचरित लिखते समय कितने वर्ष के थे? क्या उस आयु में वे गुजरात में रहते थे ? क्या उस समय में वे गुजराती भाषा में बोलचाल करते थे? गुजरात प्रदेश की कौन सी बात का उनके जीवन पर प्रभाव था ? बोली का? खान पान का ? भाषा का ? उच्चारण का ? प्रान्तता का? या गुजरात का मोह था? उन्होंने तो अपनी प्रारम्भिक गुरुओं की खोज और योगियों के खोज करते समय में भी कभी गुजराती भाषा के प्रयोग के विषय में नहीं बताया। जब वे कार्य क्षेत्र में पदार्पण किये तब वे संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान करते थे। सन् १८७२-७३ में वे जब कलकत्ता आये थे तब केशव चन्द्र सेन के कहने पर उन्होंने हिन्दी भाषा (आर्य भाषा) को राष्ट्र की भाषा मानकर हिन्दी में बोलना स्वीकार किया था। अपने आप को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित कर चुका व्यक्ति जो कलकत्ता, बम्बई, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पूना, लाहौर तक आर्यावर्त के प्रत्येक राज्यों में भ्रमण कर एक राष्ट्रीय भाषा और एक वैदिक संस्कृति का पोषक है, वह अपने काम काज, लेख और पत्र व्यवहार में गुजराती संवत् का प्रयोग करेगा, ऐसी ऊहा स्वयमेव घोषित विद्वान दार्शनेय लोकेश जी को ही हो सकती है।

जिस स्व लिखित आत्मचरित को प्रमाण मानने की बात लोकेश जी कर रहें हैं। आइये! उसके अनुसार ही विचार करते हैं कि स्वामी दयानन्द कौन से संवत् का प्रयोग करते थे गुजराती या राष्ट्रीय संवत्। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना पारिवारिक परिचय मुख्य रुप से दो बार दिया है जब वे मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना करके पुणे गये। जहाँ पर न्यायमूर्ति गोविन्द रानाडे तथा अन्य भक्तों के कहने पर उन्होंने अपना जीवन वृत्त पहली बार मौखिक रुप में ४ अगस्त सन् १८७५ ई. के व्याख्यान में बताया था। उनके वहाँ पर पन्द्रह व्याख्यान हुए थे, जो पूना प्रवचन (उपदेश मंजरी) के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय उनकी आयु पचास वर्ष की थी। दूसरा, जो विशेष महत्व रखता है, वह लिखित रुप में है, थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापको में से एक कर्नल एच. एस. अल्काट ने अप्रैल १८७९ ई. में उनसे आग्रह किया था कि वे सोसाइटी के मुख पत्र ''दि थियोसोफिस्ट'' के लिए अपनी आत्मकथा लिखकर भेजें। उनकी यह आत्मकथा, अक्तूबर १९७९ ई. दिसम्बर १९७९ ई. और नवम्बर १८८० ई. के अंको में प्रकाशित हुई थी। इससे यह पता लगता है कि सन् १८७९-८० ई. में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जब अपना आत्मचरित लिखा था तब उनकी आयु ५४-५५ वर्ष की थी। उस समय वे दो भाषा में ही अपने पत्र व्यवहार आदि करते और विज्ञापन आदि छापवाते थे। जब वे सारे कार्य संस्कृत या हिन्दी में कर रहें हैं तो वे गुजराती वाले संवत् का प्रयोग क्यों करेंगे? जबकि ५४-५५ वर्ष की आयु में एक अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका ''दि थियोसोफिस्ट'' को अपना आत्म चरित लिखकर भेजने वाले स्वामी दयानन्द गुजराती संवत् क्यों लिखेंगे? जबकि वे राष्ट्रीय संवत् लिखने में सिद्ध हस्त हैं। वे गुजराती संवत् नहीं लिखते थे राष्ट्रीय या चैत्रीय संवत् लिखते इसका प्रमाण हम आगे की समीक्षा में लिखेंगे।

२) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - महर्षि के बारे में जन्मतिथि से लेकर के गृह त्याग पर्यंत की तिथियों का उल्लेख केवल गुजराती पंचाङ्गों के हिसाब से होना चाहिए, किसी भी अन्य क्षेत्रीय पंचाङ्गों से नहीं।

समीक्षा - महर्षि दयानन्द के जन्मतिथि से लेकर गृहत्याग पर्यन्त की तिथियों गणना गुजराती पंचांग के आधार पर क्यों होनी चाहिए? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऐसा कहा है? क्या किसी जीवन चरित्र लिखने वाले विद्वान ने ऐसा कहा है? क्या महर्षि दयानन्द ने ऐसा कोई संकेत दिया है? तो फिर ऐसा निरर्थक कार्य क्यों करें? उनकी तो वैदिक कहिये या राष्ट्रीय कहिए एक ही गणना थी। जो उस समय से लेकर आज तक प्रचलित है। विक्रम संवत् जो चैत्र मास से प्रारम्भ होता है एक ही है। क्योंकि इसी चैत्रीय गणना का उपयोग महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने पत्र व्यवहार में करते थे। महर्षि दयानन्द ने जिस वर्ष अपना आत्मचरित्र लिखा था वह सन् १८७९ ई. था और संवत् १९३५ विक्रमी था। यदि महर्षि दयानन्द उस वर्ष तक गुजराती में ही पंचांग लिखा करते थे तो सन् १८७८ और १८७९ में उनके अन्य पत्रों पर भी उसकी छाप होनी चाहिए। परन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु वे चैत्रीय विक्रम संवत् को ही मानते और लिखते थे इसके सारे प्रमाण उपलब्ध हैं -

ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, (सम्पादक - पं भगवद्दत्त, प्रकाशक - राम लाल कपूर ट्रस्ट) नामक पुस्तक में से कुछ पत्रों पर छपी तिथि देखते हैं -

१) पूर्णसंख्या १८७, पत्र संख्या - १२७

श्रीयुत कृपाराम स्वामी आनन्दित रहो!

इस पत्र के अन्त में वे तिथि अंकित करते हैं -

सम्वत् १९३५ मिति माघ शुक्ल १० आदित्यवार

२) पूर्ण सँख्या - १८८, पत्र संख्या - १२८

पण्डित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा आनन्दित रहो!

इस पत्र के अन्त में वे तिथि अंकित करते हैं -

सं. १९३५ मि. फाल्गुन शु. ८ शनि ता. १ मार्च १८७९

३) पूर्ण सँख्या - १८८, पत्र संख्या-१२८

मुन्शी समर्थदान आनन्दित रहो।

इस पत्र के अन्त में वे तिथि अंकित करते हैं -

चैत्र वदी २, सोमवार संवत् १९३५

४) पूर्ण सँख्या - १९३, पत्र संख्या - १३३

कर्नल अल्काट .....।

इस पत्र के अन्त में वे तिथि अंकित करते हैं -

ता. २४ मार्च १८७९ चौत्र शु. २, सोम संवत् १९३६

ऐसे ही सैकड़ों पत्र हैं। जिन्हें स्वामी दयानन्द ने अपने हाथों से लिखा है। जिनमें विक्रम संवत् और दिनांक अंकित है। पर इनमें कहीं पर भी गुजराती संवत् तो नहीं मिलता है। फिर भी कोई कहे स्वामी दयानन्द ने जो जीवनी में संवत् १८८१ लिखा है वह गुजराती संवत् है। किस आधार पर माने कि स्वामी दयानन्द गुजराती में संवत् लिखते थे? जबकि प्रत्यक्ष प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि वे चैत्रीय या राष्ट्रीय संवत् लिखा करते थे। और दूसरी बात स्वामी दयानन्द द्वारा लिखित एक ही जीवनी जो उन्होंने अपने ही हाथों से लिखी है उनके शुरु के कुछ संवत् (वर्षों) की गिनती गुजराती में करना और शेष संवत्सरों की गिनती चैत्रीय में करना, क्या यह हास्यास्पद नहीं है? ऐसा तर्क आप ही दे सकते हैं।

३) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - जहाँ तक मैं समझता हूँ कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की जन्मतिथि का यह विषय शास्त्रार्थ का विषय नहीं है अपितु अधिक से अधिक विमर्श पूर्वक अनुभव करने का विषय है या महर्षि की वचन प्रमाण्यता के अन्तर्गत सभी विद्वानों के द्वारा एक मूंच पर आकर पुनर्विचार का विषय है।

समीक्षा - आप क्या समझते हैं उससे कोई तथ्य निर्धारित नहीं होगा। किसी भी विषय को प्रतिपादित करने के लिए, शास्त्रार्थ एक स्वस्थ परम्परा है। खासकर, जब कोई दुराग्रह करे, अपनी ही बात को सिद्ध कराना चाहे, स्वयं घोषित तथ्यों को ही सर्वोपरि माने तो शास्त्रार्थ करना ही होता है। अब उसे कोई शास्त्रार्थ कहे या संवाद कहे या विचार विमर्श कहे उसकी इच्छा। पर कोई यह सोच ले कि मैंने कहा है इसलिए सबको मान लेना चाहिए। मैंने कहा है इसलिए यही अन्तिम सत्य है। तो ऐसा होता नहीं है। परन्तु आप कहें कि ''फाल्गुन कृष्ण दशमी'' को जन्मतिथि मानने वाले लोग पुनर्विचार करें। मैं जो ''भाद्रपद शुक्ल नवमी'' मानता हूँ वही सही जन्मतिथि है। तो फिर यह कैसा संवाद हुआ? आपके कहे अनुसार यदि महर्षि के वचन के आधार पर ही निर्णय होना चाहिए। तो हम भी यही चाहते हैं कि महर्षि के वचन ही अन्तिम प्रमाण माने जायें।

४) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - सामान्य और सहज बुद्धि से भी समझा जा सकता है कि जिन महर्षि का जन्म गुजरात में हुआ और जो २१/२२ वर्षों तक वहीं पर पले और बड़े हुए, वे अपने जन्म संवत् और घर से निकलने के संवत् को उत्तरभारतीय ढंग की संवत् गणना से क्यों कहेंगे?

समीक्षा - राष्ट्रीय भावापन्न महारुपुरुष जो समुचे आर्यावर्त के लिए एक भाषा, एक संस्कृति की बात करते हैं, वे अपने पंचाग व्यवहार को एक प्रान्तीय पचांग के आधार पर व्यवहार क्यों करेंगे? जो भारतीयों के सोलह संस्कारों में और कर्मकाण्ड आदि में एक रुपता के प्रबल समर्थक हैं, इसी एक रुपता के लिए जिन्होंने ''संस्कार-विधि'' लिखी और पंच महायज्ञ विधि लिखी। जो किसी एक प्रान्त या रियासतों की भाषा को समुचे आर्यावर्त के लिए उपयोगी नहीं मानते वे स्वामी दयानन्द सरस्वती गुजराती पचांग के आधार पर अपने व्यवहार क्यों करेंगे?

महर्षि दयानन्द का जन्म गुजरात में हुआ है और वे २१-२२ वर्ष तक गुजरात में पले और बडे हुए हैं तो वे गुजराती में पंचाग का प्रयोग करते होंगे। यह अपने आप में किसी सन्यासी, वितराग महापुरुष के लिए कितनी हास्यास्पद बात हो सकती है, जबकि वे आत्मकथा लिख रहें हैं तब वे ५४ वर्ष के है, कमाल है! अब तक महर्षि दयानन्द स्वयं अपने व्यवहार में गुजरातीयता को छोड़ नहीं पाएं हैं? जबकि उनके पत्र व्यवहारों से तो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। स्वामी दयानन्द ने अपनी आत्मकथा को सन् १८७९ ई. में लिखा है। तब उनकी आयु कोई २२ वर्ष की नहीं थी ५४ वर्ष की थी। इन महाशय (लोकेश जी) के अनुसार स्वामी दयानन्द २२ वर्ष तक गुजरात में पले बडे तो वे जीवन के ५४ वें वर्ष में भी गुजराती में ही पंचाग और विक्रमी संवत् का प्रयोग करते रहे होंगे। तो ३२ वर्षों से संपूर्ण आर्यावर्त में भ्रमण करके संस्कृत और हिन्दी में बातचीत कर रहें तो राष्ट्रीय पंचांग का प्रयोग क्यों नहीं करते होंगे? जबकि स्वामी दयानन्द जैसे सन्यासी अपना परिचय देने में संकोच करते हैं किसी एक स्थानीय संस्कृति वेशभूषा से अपने आप

क्रमशः.....५ पर

पृष्ठ.....४ का शेष.....

को जोड़कर नहीं रखते वे तो वैदिक और आर्यावर्तीय सार्वदेशिक और सार्वभौमिक मान्यताओं और संस्कृति की पृष्ठ पोषक हैं फिर भी उनके लिए यह कहना कि २२ साल तक गुजरात में पले बढे तो जीवन के ५४ वर्ष में गुजराती पंचांग का ही उपयोग करते थे कितनी निराधार और तथ्यहीन बात हैं। इससे ऋषि प्रेमी स्वयं समझ सकते हैं।

५) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - उनका यजुर्वेद भाष्य मन्त्र २६/१४ देखें, मासाः को वे कार्तिकादि कहकर बता रहे हैं। चैत्र शुक्ल पंचमी को हुए आर्य समाज स्थापना और स्थापना दिन की सूचना को महर्षि कार्तिकीय संवत् १९३१ कहकर ही देते हैं (देखें श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् शक संवत् १९४६ का पहला अन्तिम कवर पृष्ठ)।

समीक्षा - आपने यजुर्वेद के एक मन्त्र को ढूंढ लिया जिसमें महर्षि दयानन्द ने मासाः शब्द का पदार्थ कार्तिक आदि महीने किया हैं। किन्तु क्या आपने यह विचार किया? कि महर्षि दयानन्द क्या अन्य मन्त्र में आए हुए मासाः शब्द के लिए भी कार्तिक आदि लिख रहें है अथवा चैत्र आदि लिख रहें हैं। परन्तु आपको आपके काम के लिए एक उदाहरण चाहिए था सो आपने यही उठा लिया। और उससे अधिक सोचने और परीक्षण करने जेहमत न उठाई। किन्तु महर्षि दयानन्द क्या अन्य मन्त्रों पर भी मासा शब्द के लिए कार्तिक आदि लिखते हैं या चैत्र आदि भी लिखते हैं इसका प्रमाण देखते हैं। इसके लिए मैं महर्षि दयानन्द द्वारा भाष्य किए हुए तीन मन्त्र पदार्थ सहित प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप लोग स्वयं देखें कि महर्षि दयानन्द ने इन तीनों मन्त्रों में मासाः शब्द आने पर चैत्र आदि महीने लिखा है या कार्तिक आदि महीने लिखे है। फिर लोकेश जी ने केवल एक उदाहरण के आधार पर यह कैसे कह दिया कि स्वामी दयानन्द तो कार्तिक से ही वर्ष का प्रारम्भ मानते थे? तो फिर अन्य अधिकतर मन्त्रों में चैत्र आदि क्यों लिखा है? यह भी तो हो सकता है यजुर्वेद के जिस मन्त्र के पदार्थ में मासाः शब्द का अर्थ स्वामी जी कार्तिक आदि महीने कर रहें है उसका भाष्य करते समय कार्तिक मास चल रहा हो क्योंकि कोई भी व्यक्ति चल रहे महीने का उदाहरण देना अच्छा समझाता हो। आइए इन निम्न मन्त्रों के माँसा शब्द पर दृष्टि डालें जो महर्षि दयानन्द के भाष्य के हैं -

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो
अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ
असिषासन्नृतेन।।

- ऋग्वेद ३/३१/९

पदार्थ - हे मनुष्यो ! जैसे (कृण्वानासः) करते हुए जन (गव्यता) अपनी वाणी के सदृश (मनसा) अन्तःकरण से (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (अमृतत्वाय) मोक्ष के होने के लिये (गातुम्) प्रशंसायुक्त भूमि को (नि, सेदुः) प्राप्त होवें तथा (इदम्) इस (चित्) भी (भूरि) बहुत (सदनम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त होवें (येन) जिस (ऋतेन) सत्य आचरण से (मासान्) चैत्र आदि महीनों के (असिषासन्) विभाग करने की इच्छा करें, उससे (एषाम्) इन पुरुषों का कल्याण (नु) शीघ्र होता है।।९।।

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो
यज्जातो अपिबो ह सोमम्।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न
मासाः शरदो वरन्त।।

- ऋग्वेद ३/३२/९

पदार्थ - हे (अद्रोघ) द्रोह से रहित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता जगदीश्वर ! (यत्) जो (सद्यः) तत्काल (जातः) प्रकट हुआ सूर्य (सोमम्) सब जगत् से रस को (अपिबः) पीता-खींचता है (तत्) वह जिन (तव) आपके (सत्यम्) सत्य (महित्वम्) महिमा को (न) नहीं उल्लङ्घन कर सकता है (ते) आपके (तवसः) बल के (ओजः) प्रभाव को न (द्यावः) प्रकाशस्वरूप लोक (न) न (अहा) दिन (न) न (मासाः) चैत्र आदि महीने और न (शरदः) वसन्त आदि ऋतुयें (वरन्त) धारण करती हैं (भवन्तं, ह) उन्हीं आपकी हम लोग निरन्तर सेवा करें ।।९।।

अर्धमासाः परूँषि ते मासाऽआच्छ्यन्तु
शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टँ सूदयन्तु
ते।।

- यजुर्वेद २३/४१

पदार्थ - हे विद्यार्थी लोग! (अहोरात्राणि) दिन-रात (अर्द्धमासाः) उजेले-अंधियारे पखवाड़े और (मासाः) चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं, वैसे (ते) तेरे (परूंषि) कठोर वचनों को (शम्यन्तः) शान्ति पहुंचाते हुए (मरुतः) उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का (आच्छ्यन्तु) विनाश करें और (ते) तेरे (विलिष्टम्) थोड़े भी कुव्यसन को (सूदयन्तु) दूर करें।

रही बात जो लोकेश जी ने लिखी है। आर्यसमाज की स्थापना और सूचना देने की उसके लिए मैं उनके सैकड़ों पत्र और विज्ञापन का उदाहरण दे सकता हूँ। जिससे यह स्पष्ट है कि वे चैत्र आदि विक्रम संवत् का ही उपयोग करते थे। जैसा कि मैंने उपरोक्त समीक्षा में कई पत्रों के उदाहरण दिये हैं।

६) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - आगे वे (विश्वस्त सूचनानुसार) शनिवार, ३० अक्टूबर, १८७५ ई० (कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा) को अहमदाबाद में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होने वाले नववर्ष पर व्याख्यान भी देते हैं।

समीक्षा - ऐसे भाषणों की विश्वस्त सूचना आपको ही प्राप्त हो सकती है। किन्तु यदि स्वामी जी ने कार्तिक महीने को वर्ष का पहिला महीना मानकर और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गुजराती नववर्ष मानकर उसके ऐतिहासिक महत्व आदि पर अहमदाबाद में कोई महत्व पूर्ण व्याख्यान दिया भी है तो इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि वे गुजराती संवत् का ही प्रयोग करते थे? या वे ये कहते हो कि गुजराती संवत् ही राष्ट्रीय संवत् है। यदि महर्षि दयानन्द को कार्तिकीय संवत् से इतना ही मोह या लगाव था जैसे लोकेश जी कहते हैं तो फिर उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना के लिए चैत्रीय संवत् का चयन क्यों किया था? कार्तिकीय को नव संवत्सर मानकर उसमें ही आर्यसमाज की स्थापना कर सकते थे? परन्तु ऐसा कुछ भी नही है बन्धुओ जैसे लोकेश अनुमान लगाते हैं।

आर्य बन्धुओं! आप स्वयं विचार करें कि यदि स्वामी दयानन्द कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष मानते थे, तो उन्होंने अपने ग्रन्थों में कहीं पर इसका उल्लेख क्यों नहीं किया? और दूसरी बात आर्यसमाज इतने वर्षों से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष मनाता आ रहा है तो वह क्या महर्षि दयानन्द की मान्यता के विरुद्ध मनाता रहा है? आर्य बन्धुओं! ऐसी कोई बात नहीं है। जब हम महर्षि दयानन्द लिखीत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में देखते हैं। जहाँ पर स्वामी जी ने वेदों के उत्पत्ति पर उत्तर देते हुए लिखा है कि - १९६०७५२९७६ वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह संवत् ७७ सतहत्तरवाँ वर्तत रहा है। इसमें आगे लिखते हैं - "इनमें से यह वर्तमान वर्ष (७७) सतहत्तरवाँ है, जिसको आर्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेत्तीसवाँ संवत् कहते हैं।" मैं पूछना चाहता हूँ यहाँ पर जो स्वामी जी ने विक्रम संवत् १९३३ लिखा है और इसे आर्य संवत् कहा है। जो कि अभी २०८१ चल रहा है, इसको स्वामी जी ने गुजराती संवत् लिखा है क्या? स्वामी जी ने आर्य लोग विक्रम संवत् मानते थे ऐसा स्पष्ट रुप से लिखा है, अब बताइये आर्य लोग क्या किसी एक प्रान्त के होते थे? आर्य लोग जिस विक्रम संवत् का प्रयोग करते थे वह किसी एक प्रदेश या राज्य का हो सकता है क्या? तो आर्यों! आप ही विचार करें स्वामी दयानन्द 'आर्य संवत्' से चैत्र वाला संवत् मानते थे या कार्तिक से प्रारम्भ होने वाला संवत् मानते थे।

७) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - इस प्रकार गुजराती पंचाङ्ग परम्परा का स्वाभाविक सत्य कार्तिकादि जो स्वामी जी की जिह्वा पर बना हुवा है वही उन्होंने भाष्य में भी लिखा है।

समीक्षा - इस प्रकार कोई गुजराती परम्परा वाला पंचाङ्ग जो कार्तिक वाला होता है, वह कभी भी स्वामी दयानन्द की जिह्वा पर नहीं बना हुआ था। स्वामीजी के ग्रन्थों, उनके वेद भाष्य, पत्र व्यवहार, विज्ञापन प्रकाशनों और उनकी आत्म कथा से यह प्रमाणित होता है कि स्वामी जी कि जिह्वा पर कभी भी गुजराती वाला पंचाङ्ग नहीं रहा। उन्होंने कभी इसका प्रयोग नहीं किया। वे, आर्यलोग जिस राष्ट्रीय पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे जिसको स्वामी जी ने "आर्य लोगों के प्रयोग करने वाला पंचाङ्ग बताया है। उसी का प्रयोग करते थे। सामान्य व्यवहार से यह समझा जा सकता है कि जिह्वा पर बने हुए या चढे हुए विषय को वही बता सकता है जिन्होंने उन्हें साक्षात् सुना हो। क्या स्वामी जी के समकालीन किसी भी विद्वान ने यह बताया या लिखा है कि स्वामी गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे? तो फिर यह क्यों माने कि वे गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे और यही बात स्वामी जी के भाष्य से भी प्रमाणित होती है। तो फिर इस प्रकार के अप्रमाणिक तथ्यों के द्वारा महर्षि दयानन्द जैसे महापुरुष की जन्मतिथि को विकृत करने का अशोभनीय कार्य नहीं करना चाहिए।

८) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - इसी भाष्य में ऋतुक्रम की बात पर वे वसन्त ऋतु को ही प्रथम ऋतु के रूप में उल्लेख कर रहे हैं। और कहीं अन्यत्र भी जहाँ भी ऋतु क्रम या सौर मासों के क्रम से मासों का उल्लेख करना होना होता है तो वहां पर ऋषि चैत्रादि भी कह सकते हैं।"

समीक्षा - वेदभाष्य में उनके महीने आदि के प्रयोग के अनेक उदाहरण पूर्व समीक्षा में हमने प्रस्तुत किए हैं जिनसे पता लगता हैं वे चैत्र महीने से ही वर्ष का प्रारम्भ करते थे। यही बात ऋतुओं के सम्बन्ध में भी लागू होती है। जब महर्षि दयानन्द गुजराती पंचाग का प्रयोग करते ही न थे। तो इस प्रकार के तर्कों का कोई स्थान नहीं रह जाता है। चैत्रीय कहें या राष्ट्रीय कहें वे एक ही पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति प्रकरण से और यह सुदृढ़ हो जाता है कि महर्षि दयानन्द सम्पूर्ण आर्यावर्त में प्रयुक्त होने वाले राष्ट्रीय संवत् का ही प्रयोग करते थे, वे लिखते हैं - "कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है तथा वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष दिन, नक्षत्र मुहूर्त लग्न और पल आदि समय में हमने फलाना काम किया था और करते हैं, अर्थात् जैसे विक्रम संवत् १९३३ फाल्गुन मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी है, इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आयें हैं। जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढाते-घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं। और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त देश में एक सा वर्तमान हो रहा है।" अब पाठक! आप ही विचार करें इन उपरोक्त पंक्तियों से आप लोगों को लगता है कि महर्षि दयानन्द गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे?

९) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - सौर मासों के क्रम में सर्वत्र सङ्क्रान्ति आधारित एक ही क्रम है लेकिन चन्द्रमासों का क्रम गुजरात में अज्ञातकाल से और आज भी कार्तिकादि क्रम से ही है।

समीक्षा - सौर मासों का क्रम पूरे भारत में एक है और चन्द्र मासों का क्रम गुजरात में कार्तिक से शुरु होता है। यहाँ पर संवाद, गुजराती पंचाङ्गों की व्यवस्था या सत्यता का नहीं चला रहा है। वे कब शुरु होते हैं कब समाप्त होते हैं। संवाद यह है कि महर्षि दयानन्द कौन से संवत् के आधार पर कौन सी तिथि, वार, नक्षत्र, मास, पक्ष और संवत्सर का प्रयोग करते थे? वे कार्तिकीय संवत् का प्रयोग करे थे या चैत्रीय संवत् का प्रयोग करते थे? और यह बात स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने आत्मचरित्र में संवत् बताया है वह चैत्रीय विक्रम संवत् है। जिसको आर्य लोग प्रयोग करते थे और प्रयोग कर रहें हैं, महर्षि दयानन्द के पठन-पाठन, लेखन, विज्ञापन आदि में छपी तिथि और तारीखों से यह स्पष्ट है कि वे चैत्रीय संवत् का प्रयोग करते थे।

महर्षि दयानन्द ने अपने अनेकों ग्रन्थों को प्रारम्भ करते समय मङ्गलाचरण के साथ विभिन्न छन्दों में ईश्वर की भक्ति की है और उसको प्रारम्भ करने की तिथि, मास और वार का भी वर्णन किया है जैसा कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को उन्होंने कब लिखना आरम्भ किया उसको एक श्लोक के माध्यम से बता रहें हैं -

कालरामाङ्कचन्द्रेब्देष भाद्रमासे सिते
दले।
प्रतिपद्यादित्यवारे भाष्यारम्भः कृतो
मया।।

कोई विद्वान बता सकता है कि महर्षि दयानन्द ने यहाँ पर जो मास, तिथि, वार और संवत् की बात की है वह क्या गुजराती है?

दूसरा प्रमाण -

महर्षि दयानन्द ने आर्यभाषा में एक छोटी पुस्तक लिखी है 'व्यवहारभानु' उसकी भूमिका की समाप्ति पर वे लिखते हैं - "फाल्गुन शुक्ल १५ सं. १९३६ दयानन्द सरस्वती, काशी।"

क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति बता सकता है। कि महर्षि दयानन्द ने यहाँ पर गुजराती संवत् का प्रयोग किया है अथवा आर्यों के संवत् का प्रयोग किया है?

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द राष्ट्रीय, आर्यों के पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे गुजराती पंचाङ्ग का नहीं। क्योंकि वे राष्ट्रीय भावापन्न पुरुष थे। वे एक राष्ट्रीय भाषा एक संस्कृति और एक ध्वज के समुपासक थे। इसके लिए जीवन मे उन्होंने अनेक प्रयास किए थे।

१०) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - यह सब देखते और समझते हुए भी आपसे कितना बड़ा झूठ प्रचारित हो गया है कि महर्षि ने सर्वत्र उत्तर भारतीय विक्रम संवत् का ही उल्लेख किया है। यह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक और अति दुखद है।

समीक्षा - सच कहा आपने लोकेश जी! यह सब बिना देखे और बिना सोचे! आपके द्वारा कितने बडे झूठ का प्रचार हो गया कि महर्षि दयानन्द गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे। यह कितना महाआश्चर्य जनक झूठ आपने फैला दिया। कितने दुख की बात है कि एक महापुरुष के आशय को न समझकर, अल्पमति के द्वारा और महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का विस्तृत स्वाध्याय किए बिना और सम्बन्धित प्रमाणिक विद्वानों से किसी भी प्रकार की कोई चर्चा किए बिना, कोई संवाद किए बिना ही, एक पक्षीय मत को स्थापित करके निर्णय भी कर लिया। इसमें महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा तथा सार्वदेशिक सभा जैसे आर्यसमाजों के सर्वोच्च संगठनों की उपेक्षा करके 'अहमेव विद्वान न अन्यत् कोपि' अहंभाव के साथ बस अपनी बातें लिख दी व अपने द्वारा अप्रचलित अमान्य और अप्रमाणिक तथाकथित एक मात्र वैदिक पंचाङ्ग में छपवा भी दिया कि महर्षि दयानन्द की जन्म तिथि भाद्र शुक्ल नवमी है। क्या आपको सभा ने निर्धारित किया ? अथवा आपने सम्बन्धित विद्वानों की कोई समिति बनाई? आपके द्वारा बताई गई तथाकथित प्रमाणित जन्मतिथि परोपकारिणी सभा ने अब तक स्वीकृत क्यों नहीं की? आर्यजगत् के ९९ प्रतिशत विद्वानों को आपकी बताई तिथि से सहमति क्यों नहीं है ? आपने अनेक लेखों में बडे अव्यवहारिक और अमर्यादित टिप्पणियां आर्य विद्वानों और संस्थाओं के लिए की है। क्या यह सामाजिक अपराध नहीं है? आप इस विषय में महर्षि की भक्ति के अनुरुप अपने तर्कों को विद्वानों और सभा को चिन्तन और मन्थन के लिए लिख सकते थे। अपने विचारों से अवगत करा सकते थे। और इस पर अपने विवेक से भी विद्वानों को बुलाकर संवाद कर सकते थे। परन्तु इस प्रकार के विनम्र प्रयास से आप दूर रहे। और सबसे बडी गलती की जिस विषय को अभी परीक्षा की कोटि में और संवाद के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए था उसको आपने पंचाङ्ग में छापकर सबको भेज दिया और भेज रहें है। ये कितने बडे झूठ को प्रचारित कर रहें हैं। क्या इसका कोई औचित्य है ? क्या पंचाङ्ग में और जन्मतिथि के निर्धारण और बदलाव में कोई भी व्यक्ति, व्यक्तिगत रुप से बिना संगठन और सहमति के कुछ लिखकर

क्रमशः.....७ पर

गुरु ग्रन्थ साहिब में मांस शराब नशे आदि का खन्डन

दसों गुरू और भक्त जन जिनकी वाणी गुरू ग्रन्थ साहब में दर्ज है, मांस शराब आदि के सेवन को महापाप मानते थे। आइये हम सभी जन गुरु की शिक्षाओं पर चलते हुए अपने जीवन में मद्य मांसादि का सेवन कदापि न करने का संकल्प लें जिससे कि इस पर्व को मनाना वास्तव में सार्थक हो सके।

मनुष्य पन इसी में है कि हम पाप की कमाई से अपना पेट न भरें। उस की प्रजा रूपी प्राणियों को दुःख देकर उनके प्राण लेकर या किसी का अधिकार छीन कर या चोरी ठग्गी आदि पाप कर्मों से पेट की आग को न बुझायें। न ही बुद्धि के नाश करने वाले तामसिक पदार्थों का सेवन करें। हमारा आहार सात्विक हो, जिस को खा कर संयम पूर्वक सादा और स्वस्थ जीवन व्यतीत करें। चूकि मांस शराब और दूसरे सब नशों का सेवन करना पाप, अधर्म और तमोगुण उत्पन्न करने वाला है, अतः इन का कभी सेवन न करें। प्राचीन वैदिक ऋषियों का आशय भी यही है कि मनुष्य शुभ कर्म करता हुआ कम से कम सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीने की इच्छा करे।

गुरू अर्जन देव जी ने भी साधु पुरुषों का यही लक्षण बताया है कि -

कोटि पतित जाकै संगि उधार
एक नरंकार जाकै नाम अधार।।
सर्व जियां का जानै भेओ।
कृपा निधान निरंजन देओ।।३।।
(गोड़ी म०५)

अर्थात - साधु पुरुष वह है जो करोड़ों गिरे हुओं पतितों का उद्धार करता है और लाखों पापियों को सन्मार्ग पर लाता है। एक परमात्मा को अपना मित्र और आधार मानता है। प्राणीमात्र से प्रेम करता है, जो सब पर कृपा करता और निर्लोभ है।

ना को वैरी नहीं बिगाना,
सगल संग हम को बन आई।।
(कानड़ा म०५)

परन्तु दुःख की बात है कि सिखों के नेता और उपदेशक मांस, शराब आदि नशों का खुला सेवन और प्रचार करने लग गए हैं। मांस को महाप्रसाद और जीवों का झटका (मारना) धर्म का अंग मानने लग गए हैं।

जबकि भाई गुरू दास जी ने भी वारों में लिखा कि:-

आन महां परशाद वन्ड
खुवाया ।।१०।। (वार २०)।

अब हम गुरूवाणी के कुछ प्रमाण भी लिखते हैं जो वेदानुकूल कथन की पुष्टी करने वाले हैं:-

कलि होई कुते मुहीं, खाज
होआ मुरदार।।
कूड़ बोलि बोलि भोंकणा,
चूका धर्म बीचार।।
(सारंग की वार म०१)

"अर्थात - अब तो मनुष्यों का स्वभाव कुत्तों जैसा हो गया है, क्योंकि लोग मुरदार खाने लग गए हैं। जिसको भक्षण कर झूठ बोलते, मानों कुत्तों की तरह भोंकते या बकवास करते हैं, धर्म का तो विचार ही उठ गया है।

हिंसा तो मन ते नहीं छूटी,
जिया दया नहीं पाली।।
परमानन्द साध संगति मिलि,
कथा पुनीत न चाली।।३।।
(सारंग म०५)

अर्थात - पापी लोगों ने हिंसा या प्राणी घात नहीं छोड़ा, जीवों पर दया नहीं करते और न ही यह साधु संग करते, या भले पुरुषों की संगत में जा कर धर्म की पवित्र कथा ही सुनते हैं।।

बेद कतेब कहो मत झूठे, झूठा
जो न विचारै।।
जो सब में एक खुदाए कहत
हो, तो क्यों मुर्गी मारै।।१।।
(प्रभाती बानी कबीर)

अर्थात - हे मनुष्यो ! वेदादि धर्म पुस्तकों को झूठा मत कहो। झूठा तो वह है जो इन पर विचार नहीं करता, यदि सब जगह और सब में परमात्मा को व्यापक मानते हो तो फिर मुर्गादि प्राणियों को क्यों मारते हो?

कबीर भांग, माछुली, सुरापानि जो
जो प्राणी खांहि।।
तीरथ बरत नेम किये ते, सभै
रसातल जांहि।।२३।।
(श्लोक कबीर जी)

अर्थात - जो लोग भांग, मछली आदि, नशे, मांस, शराब आदि अभक्ष्य भोजन करते हैं, उनके तीर्थ स्नान, व्रत और नित्य नियम सभी अकारथ जाते हैं।

अपने सिखों के लिये दशम गुरु की आज्ञा है कि:-

कुठा, हुक्का, चरस, तम्बाकू,
गांजा, टोपी, ताड़ी, खाकू,
इनकी ओर कभी न देखे।
रहत वन्त जो सिख विशेषे।।
(रहतनामा देसासिंह)

अर्थात - मेरे सिख जो विशेष रहत वाले हैं, वह मांस, चरस, तम्बाकू, गांजा, चिलम, ताड़ी शराब आदि का प्रयोग नहीं करते, वह इन गन्दी वस्तुओं की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखते।

बकरा झटका बीच न करें,
और मांस न लंगर बड़े।
-स्वामी अमृतानन्द सरस्वती

अर्थात - लंगर या रसोई घर में बकरे का मांस, झटका तैयार न करें और न ले जाएं।

अच्छे गुरु सिख मांस, शराब, तम्बाकू, भांग को भक्षणवकरना तो एक ओर, इस अपवित्र वस्तुओं को छूते भी नहीं।
(पन्थ प्रकाश)

सब खावें लुट जहान नू, पी
दारू खाएं कबाब।
(जन्म साखी पृष्ठ-१९७)

अर्थात - सब पापी मनुष्य संसार को लूट कर खाते, शराब पीते और मांसाहार करते हैं।

रोजा धरै मनावै अल्लाह,
सुआदति जियां संघारै।।
आपा देखि अवर नहीं देखै,
काहे को झख मारै।।१।।
(आसा कबीर जी)

अर्थात - हे मोमन ! तू ईश्वर को रिझाने के लिये रोजा.. या व्रत रखता है और अपनी रसना के सुवाद के लिये जीवों का घात करता है, तू अपना स्वाद देखता पर दूसरे के दुःख को अनुभव नहीं करता और इसको धर्म समझता है। अरे! क्यों झक मारता है।

जीआ वधहु सु धर्म कर
थपिहु, अधर्म कहो कत भाई।।
आपस को मुनिवर कर
थपिहु, का को कहहु कसाई।।२।।
(राग मारू कबीर जी)

ओ भोले मनुष्य ! प्राणी को मारना यदि तूने धर्म मान रखा है तो फिर पाप किस को कहा जायेगा? मांसहारी बगुला भक्त यदि मुनिवर कहलाने लगे, तो कसाई किन का नाम रखोगे?

जो करे इबादत बन्दगी, उस
नू मांस न पाक।
सभना अन्दर रम रिहया, हर
दम साहिब आप।।
(जन्म साखी
पृ०२१५)

अर्थात् - ईश्वर भक्ति करने वालों के लिये हर प्रकार का मांस अपवित्र है। क्योंकि परमात्मा प्राणिमात्र में सदा और सर्वव्यापक है।

ऊपरोक्त प्रमाणों से साफ सिद्ध है कि दसों गुरू और भक्त जन जिनकी वाणी गुरू ग्रन्थ साहब में दर्ज है, मांस शराब आदि के सेवन को महापाप मानते थे। गुरू वाणी में और भी अनेक प्रमाण हैं। आशा है सत्य के प्रेमी सज्जन इन से ही लाभ उठायेंगे।

स्रोत - गुरु ग्रन्थ का वैदिक पन्थ।
प्रस्तुति - आर्य रमेश चन्द्र बावा

पृष्ठ.....१ का शेष.....

को एक विशाल राष्ट्र के रूप में निरूपित करते हुए समस्त प्राणियों में विश्व बन्धुत्व की भावना को समाहित करने का आदेश दिया गया है जो विश्व के अन्य किसी साहित्य में प्राप्य नहीं है-

"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"।
मित्रस्य मा चक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।।
मित्रस्याहं चक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीसे।
मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे।।
यजु०३६/१२

अर्थात् मैं प्राणिमात्र को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखूँ तथा समस्त जीव भी मुझे मैत्री पूर्ण निर्भय दृष्टि से देखें। हम सब एक दूसरे के लिए मित्रवत् रहें।

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" अथर्व १२.०१.१२

यह स्वाभाविक है कि मनुष्य अपनी मातृ भूमि में पैदा होने वाला अनाज, फल, कन्दमूल इत्यादि का सेवन करता है और पुष्ट होता है। तब अपनी मातृ भूमि पर प्रेम उमड़ता है। यदि माता के प्रेम की उपमा कोई देनी होती है तो वह केवल मातृभूमि से हो सकती है अन्य से नहीं। ऐसी मातृभूमि जो हमारा लालन पालन करती है, हमें हृष्टपुष्ट बनाती है जिसके अन्न सेवन से हम बड़े होते हैं, जो हमारी शत्रुओं से असुरों से लुटेरों से हमारी रक्षा करती है, जो हमें उत्कृष्ट राष्ट्र का नागरिक बनने का गौरव प्रदान करती है। ऐसी मातृभूमि के लिए हम सभी बलिदान होने के लिए सदा तत्पर रहें। यही भावना वेद में उद्धृत है वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम"

अथर्व-१२/१/६२

सभी को सौहार्द भाव से रहने का उपदेश है भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग हैं भिन्न-भिन्न धर्मों से हैं भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के हैं फिर भी सभी मिलकर विश्व को अपना परिवार समझें।

जन विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्मणां पृथिनी यधौकसम्।
अथर्व-१२.१.४५

पारिवारिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में भी पिता-पुत्र, भाई-बहन, भाई-भाई, बहन-बहन का भी आपसी सम्बन्ध विद्वेष रहित हो।

अनुव्रतःपितः पुत्रो मात्रा भवतु सन्मनाः।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन मा स्वसारमुत स्वसा।।
अथर्व-३.३०.२३

पति-पत्नी को चक्रवात अर्थात चकवा चकवी के समान एक दूसरे के साथ प्रेम पूर्वक रहने का भी उपदेश है।

"चक्रवाकेव दम्पती" अथर्व-१४.२.२५

वेद में पत्नी सदा शान्त और मधुरवाणी से ही पत्नी से वार्तालाप करे क्योंकि पारिवारिक सुख शान्ति के लिए यह आवश्यक है।

जाया पत्ये मधुमती वाचं वादत शन्तिवाम्।
अथर्व-३/३०/२

वेदों में नारी को पुरूष के समान ही परिवार निर्माण में एक सहयोगी की भूमिका में दिखाया गया है। नारी को तो परिवार में सम्राज्ञी की पदवी प्रदत्त की गयी है। क्योंकि परिवार में सास-ससुर ननद की दृष्टि में यही भावना स्वीकार्य है।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञीश्वज्रवा भवः।
ननादरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृष।।
ऋ० १०/८५/४६

विश्व के स्वीकार करने योग्य एवं सुख, शान्ति व समृद्धि प्रदान करने वाले ये वेदों के उपदेश ही इसके मूल भूत कारण हैं। विश्वास संस्कृति राष्ट्र व जाति की आत्मा होती है। आत्मिक उत्थान का प्रतीक है संस्कृति। शारीरिक, आत्मिक एवं बौद्धिक विकास ही संस्कृति का उद्देश्य है। यहाँ कोई छोटा बड़ा नहीं। सभी को मिलकर चलने का, मिलकर विचार विनिमय करने का आदेश वेदों में ही प्राप्य है।

"संगच्छादवं सवदध्वं सं वो मनासि जानताम्"
ऋ० १०/१९१/१

इस प्रकार वेदों के बताये हुए मार्ग को प्रशस्त करते हुए सारे विश्व का मार्गदर्शन किया। हमारा समाज स्वस्थ एवं आदर्श प्रेरित सेवन यापन की प्रेरणा देने वाला हो। हिंसा, चोरी व्यभिचारों, मद्यपान, जुआ, असत्य भाषण और इन पापों को करने वाले दुष्टों का नाश ही हमारे लिए कल्याणकारी होगा। वेदों में जुआ खेलने की निन्दा की गई है। कठिन जीवन बिता कर कृषि आदि में परिश्रम पूर्वक धन प्राप्त करने की प्रशंसा की गई है। (ऋ० १०/३४/१३) यही है वेदों की उपयोगिता और सारे विश्व का उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय मार्ग।

चलभाष-७००६८२२७२

पृष्ठ.....५ का शेष.....

बाँट देगा? क्या यह सही है? फिर तो महर्षि दयानन्द के विरोधी भी कुछ भी लिखकर बाँटते रहेंगे। तो उन्हें भी यही छूट होनी चाहिए ? अच्छा होता इसको पंचाङ्ग में प्रकाशित करने से पहले आप विद्वानों को आश्वस्त करते। थोड़ा विवेक और धैर्य का परिचय देते। कई वर्षों से यह देख रहा हूँ, इसलिए यह लेखनी उठाई है।

११) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) – महर्षि की वास्तविक जन्म तिथि तात्कालिक गुजराती पंचाङ्गों के अनुसार भाद्रपद शुक्ल नौमी संवत् १८८१ वि. तदनुसार २० सितम्बर १८२५ ई० ही है। इससे अन्यथा कुछ भी नहीं (विस्तृत तर्कों के लिए देखें श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् शक संवत् १९४६ का पृष्ठ १७ पर दिया गया मेरा आलेख)।

समीक्षा – महर्षि दयानन्द की वास्तविक जन्मतिथि तात्कालिक गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार मानने का, कोई कारण ही नहीं है। महर्षि दयानन्द गुजरात में पैदा हुए थे इसलिए उनकी जन्मतिथि गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार ही मानी जाए। ये हेतु हास्यास्पद है। क्योंकि महर्षि दयानन्द ने अपना जन्म परिचय और जन्मतिथि कभी भी गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार नहीं दिया। क्योंकि वे कभी गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते ही नहीं थे। जैसा कि उनके पत्र व्यवहारों से स्पष्ट है। तो फिर गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार उनकी जन्मतिथि का निर्धारण क्यों करें? और किसी अन्य पंचाङ्ग के अनुसार बताना गलत नहीं है पर उसके आगे यह निर्देश किया जाना चाहिए कि इस पंचाङ्ग के अनुसार जन्मतिथि ये निश्चित होती है जैसे ईस्वी सन् के आधार पर १२ फरावरी १८२५ है। दूसरी बात लोकेश जी ने लिखा है कि ''इससे दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता।'' यह कितनी दम्भ की बात है कि बिना अन्वेषण किये इन्होंने कह दिया कि यही सही तथ्य है। मोहन आर्ष पत्रक पर छपा आपका आलेख भी इस तरह के समीक्षा करने योग्य है।

१२) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) – महर्षि का स्वयं के द्वारा हस्तलिखित जन्मचरित्र मेरे लिए सबसे बड़ा और अन्तिम प्रमाण ग्रन्थ है। किसी भी नैष्ठिक आर्यबन्धु – भगिनी के लिए भी उनकी इस लिखित वाणी को सम्मान न देने से बड़ा उनका निरादर नहीं हो सकता। अस्तु,

समीक्षा – महर्षि दयानन्द का स्वयं के द्वारा हस्तलिखित जन्मचरित्र आपके लिए ही क्यों? सबके लिए सबसे बडा और अन्तिम प्रमाण है। हम भी उसी के आधार पर ही अपनी बात रख रहें हैं। मैंने तो पूर्व में यही कहा है कि महर्षि दयानन्द ने जो अपने द्वारा लिखित आत्मचरित्र में १८८१ संवत् लिखा है, वहाँ पर यह कहाँ लिखा है कि यह गुजराती संवत् है? क्योंकि वे हिन्दी और राष्ट्रीय विक्रम संवत् का प्रयोग करते थे जिसको समस्त आर्यावर्त के आर्य लोग करते थे। तो फिर स्वामी जी आर्यभाषा हिन्दी भाषा में अपना आत्मचरित्र लिखते समय गुजराती पंचाङ्ग का क्यों प्रयोग करेंगे? वे प्रयोग करते भी नहीं थे। वे राष्ट्रीय विक्रम संवत् का प्रयोग करते थे।

किसी भी नैष्ठिक भाई बहनों को ही क्यों? किसी भी गृहस्थी को भी यह शोभा क्यों देगा कि वे महर्षि दयानन्द सदृश महापुरुष की जन्मतिथि का मनमाना चित्रण करके अपनी मनघडन्त जन्मतिथि बतायें? क्या उसके स्वयं का व्यवहार महर्षि दयानन्द की लिखित वाणी का असम्मान और निरादर नहीं है? आपको अपने द्वारा बताये गये तथ्य जो भ्रान्ति पूर्ण होते हुए भी सबसे सही और अन्तिम लगते है। इससे बडा स्वामी दयानन्द का निरादर और क्या हो सकता है? और ऐसे गलत तथ्यों के आधार पर आर्य जनता को न केवल भ्रम में रखा अपितु पंचाङ्ग में छापकर उनकी गलत तिथि मनाने के पाप का भी प्रचार कर दिया। क्या वैदिक पंचाङ्ग के नाम पर आप महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि के निर्धारण और उसके प्रचार के उपयुक्त या लोगों के जन समुह द्वारा मानित या अधिकृत व्यक्ति हैं या थे? फिर आपने अनधिकार चेष्टा क्योंकि की? वह भी सबसे भ्रामक और गलत तिथि के आधार पर?

१३) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) –

१. संवत् १८८१ में जन्म होने की लिखित स्वीकृति।

२. संवत् १९०३ में गृह त्याग की लिखित स्वीकृति।

३. गृह त्याग से कुछ पूर्व तक उनकी वय के २१वें वर्ष के पूर्ण हो जाने की लिखित स्वीकृति।

४. गृह त्याग से पूर्व विवाह की तैयारी एक मास में ही पूरी हो जाने का अभिकथन।

समीक्षा –

१. संवत् १८८१ लिखना यह विक्रम संवत् और हिन्दी संवत् है। गुजराती संवत् बिल्कुल भी नहीं है।

२. संवत् १९०३ में गृहत्याग लिखने से भाद्रपद महीने में जन्मतिथि निर्धारित नहीं हो सकती। क्योंकि गुजराती संवत् की गणना है ही नहीं।

३. गृह त्याग पूर्व तक २१ वर्ष होने की पूर्ण स्वीकृति से एक ही जीवन चरित्र के कुछ भाग गुजराती संवत् में और कुछ भाग चैत्रीय संवत् में गणना करना तर्कहीन और निरर्थक है।

४. गृह त्याग से पूर्व विवाह की तैयारी एक मास में पूर्ण हो गई इस अभिकथन से, कैसे गुजराती संवत् की गणना हो सकती है? जबकि संवत् १९०३ चैत्रीय संवत् का स्पष्ट उल्लेख कर रहें है।

१४) पूर्वपक्ष (लोकेश जी) – उनके ये आधार कथन/लेख मेरे लिए ब्रह्म वाक्य हैं जिनसे किसी भी स्थिति में ये तिथियां कार्तिकीय (गुजराती) संवत् से बाहर की नहीं हो सकतीं। धन्यवाद। सादर,

समीक्षा – महर्षि के ये आधार और कथन आपके लिए ही नहीं सबके लिए ही प्रमाण हैं। इसमें किसी को कोई संशय नहीं होना चाहिए। क्योंकि महर्षि दयानन्द ने विक्रम संवत् (आर्यों) वाला अर्थात् चैत्रिय वाला ही लिखा है। न कि गुजराती वाला लिखा है। महर्षि दयानन्द सर्वत्र राष्ट्रीय पंचाङ्ग का ही प्रयोग करते थे। और वे तारीख और वार का भी प्रयोग करते थे। इसके हमने अनेकों प्रमाण दिए हैं। फिर भी बिना मंथन किए, बिना विद्वानों से चर्चा किए, श्रीमान् दार्शनेय लोकेश जी का यह कहना कि किसी भी स्थिति में कार्तिकीय गुजराती संवत् से ये तिथियाँ बाहर की नहीं हो सकती, बहुत बचकानी और तर्क हीन है। बिना प्रमाण और बिना तथ्यों के अपनी बातों को ब्रह्मवाक्य कहने का कार्य केवल यही कर सकते हैं। बिना शास्त्रार्थ, शोध और अन्वेषण के अपनी पीठ थप थपाना कोई लोकेश जी जैसा व्यक्ति कर सकता था। जो इन्होंने कर दिखाया है। शुरु में ये लिखते हैं यह विषय आपसी परामर्श और संवाद का है। फिर उसी विषय के लिए लिखते है। 'भाद्रपद शुक्ल नवमी' से बाहर की कोई तिथि, स्वामी दयानन्द की जन्मतिथि हो ही नहीं सकती। यही इनके लिए ब्रह्म वाक्य है। तो फिर संवाद कैसा? जब घोषणा कर ही दी, अन्तिम प्रमाण भी कह दिया। उसके अतिरिक्त मैं कोई मान ही नहीं सकता कह दिया। तो फिर आप कौन सा संवाद और शास्त्रार्थ करना चाहेंगे? स्वयं विचार कीजिए।

महानुभावों! महर्षि दयानन्द के 'जीवनी लेखक' विद्वानों के अन्वेषण और उनके अथक प्रयासों से तथा महर्षि दयानन्द के जीवन काल में उनसे बातचीत किए हुए उनके भक्तों और पारिवारिक जनों के अनुमोदन से यह तथ्य निर्विवाद रुप से प्रमाणित है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्मतिथि संवत् १८८१ विक्रमी, फाल्गुन मास, कृष्ण पक्ष, मूल नक्षत्र की सूर्योदय की तिथि, दशमी तदनुसार शनिवार १२ फरवरी सन् १८२५ ई. है। उनका जन्म मौरवी राज्य (गुजरात) के अन्तर्गत टंकारा ग्राम के जीवापुर मोहल्ले में कर्शन तिवारी के घर हुआ था। मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण तथा उनके पिताजी बडे शिव भक्त थे। इसलिए उन्होंने उनका नाम 'मूलशंकर' रखा था। महर्षि दयानन्द ने मुम्बई निवासी प्राण जीवन दास को अपने बचपन का नाम मूलशंकर बताया था। और प्राण जीवन दास ने यह बात देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय को बताई थी। इसी बात का उल्लेख देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय ने दयानन्द जीवन-चरित में किया है। देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय ने अपना सारा जीवन महर्षि दयानन्द के जीवनी अन्वेषण में लगा दिया। वे इस क्रम में चार बार टंकारा गये थे। और वहाँ पर महर्षि दयानन्द की छोटी सगी बहिन प्रेम बाई से मिला करते थे। 'प्रेम बाई' पाँच भाई बहनों में चौथे क्रम मे थी। उनका जन्म संवत् १८८९ को हुआ था। महर्षि दयानन्द के गृहत्याग करने पर उनके अन्य दो भाई और दो बहनों में केवल 'प्रेम बाई' ही जीवित थी। इसी से उनका वंश वृक्ष आगे बढा था। जो भक्त महर्षि दयानन्द के 'वंशवृक्ष' को ठीक-ठीक समझना चाहते हैं। उन्हें डा. ज्वलन्त शास्त्री जी का खोजपूर्ण लिखित लेख ''ऋषि दयानन्द का वंशवृक्ष'' अवश्य पढना चाहिए। जो 'परोपकारी' पत्रिका के मार्च (प्रथम) २०२४ ई. में प्रकाशित हुआ है।

अब मेरा सभी आर्यों से निवेदन है कि महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि ''फाल्गुन कृष्ण दशमी'' संवत् १८८१ को, विक्रमी और चैत्रिय संवत् के आधार पर निर्विवाद रुप से प्रामाणिक और सत्य मानकर, इसी के अनुरुप महर्षि दयानन्द की जयन्ती मनायें। इसमें हमारे सार्वदेशिक के पदाधिकारियों से निवेदन है कि वे सरकारी रिकार्ड में और पाठ्य पुस्तकों में १२ फरवरी १८२५ ई. ही अंकित करवायें क्योंकि वहाँ पर १८२४ अंकित हो रखा है और गुगल पर भी इस भूल को सुधारें। समस्त ऋषि प्रेमी आर्य जनता भी ''आर्य पर्व पद्धति'' में ''फाल्गुन कृष्ण दशमी'' संवत् १८८१ को ही महर्षि दयानन्द का जन्मदिवस ''दयानन्द दशमी'' के नाम से प्रसिद्ध करें और मनायें। भाद्रपद शुक्ल नवमी, २० सितम्बर, एक भ्रामक निराधार और तथ्यहीन जन्मतिथि है।

मो.९६८१८४६४१९

160 वॉ पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जन्मोत्सव धूमधाम से सम्पन्न

हापुड़,रविवार,२८ अप्रैल २०२४, केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् उत्तर प्रदेश एवं आर्य समाज हापुड़ के संयुक्त तत्वावधान में वेद प्रचारक, महान मनीषी,महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का १६० वॉ जन्मोत्सव आर्य समाज हापुड़ में धूमधाम से सम्पन्न हुआ।धर्माचार्य आचार्य धर्मेन्द्र शास्त्री के ब्रह्मत्व में यज्ञ संपन्न हुआ। मुख्य यज्ञमान श्रीमती आशा एवं श्री सत्यपाल आर्य,रेखा गोयल एवं मदन गोयल थे।

आर्य समाज के प्रधान पवन कुमार आर्य ने ध्वजारोहण कर पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जन्मोत्सव समारोह का उद्घाटन किया।

भजनोपदेशक ओमपाल शास्त्री, एवं मास्टर विजेन्द्र आर्य द्वारा प्रस्तुत दयानन्द महिमा एवं ईश भक्ति के गीतों को सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए।

राष्ट्रीय अध्यक्ष अनिल आर्य ने पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी एक युवा दार्शनिक विद्वान् थे जिन्होंने छबीस वर्ष की अल्पायु में ही अनेक भाषाओं व विषयों का समयक ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उसे देख कर बड़े-बड़े विद्वान चकित रह जाते थे।पंडित जी गूढ़ से गूढ़ प्रश्न का उत्तर सरलता से देते थे।दार्शनिक गुत्थी उनके समक्ष गुत्थी ही न रहती।इस नवयुवक के एक वर्ष के कार्य एवं उपलब्धियाँ महापुरुषों में उच्च स्थान दिलवाने के लिए पर्याप्त हैं, आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती के बाद प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने उनकी विचार धारा को आगे प्रचारित व प्रसारित किया।आज के युवाओं को उनका अनुसरण करना चाहिए।

मुख्य अतिथि आर्य नेता माया प्रकाश त्यागी ने कहा कि अद्भुत प्रतिभा के धनी पं.गुरुदत्त विद्यार्थी ने स्वामी अच्युता नंद गुरु को भी शिष्य बना लिया था, शिष्य-वैदिक संस्कृति की रक्षा के लिए पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने आर्यसमाज में विद्वानों की जरूरत समझी।अतः गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने स्वामी अच्युतानन्द को (जो नवीन वेदांती थे) आर्यसमाजी (आर्य सन्यासी) बनाने के लिए ठान लिया।इसके लिए गुरुदत्त जी उनके शिष्य बनकर उनके पास जाया करते थे।फिर क्या हुआ समय बदला गुरु शिष्य बन गया और शिष्य गुरु।स्वामी अच्युता नन्द कहा करते थे, ''पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी का सच्चा प्रेम,अथाह योग्यता और गुण हमें आर्यसमाज में खींच लाया।''

मुख्य वक्ता आचार्य वाचस्पति (अध्यक्ष उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान,लखनऊ) ने नमस्कार मंत्र बोलकर कहा कि ऋषि दयानन्द ने जो पद्धति शिक्षा विषय पर बताई थी कि जब तक गुरुकुल नहीं खोलोगे तुम्हारा उद्धार नहीं होगा।संसार की सब भाषाएं संस्कृत का अपभ्रंश हैं।शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाकर संस्कृत और वेदों को पढ़ाओ,वेदों में विज्ञान है।भारत को बचाने के लिए प्रत्येक आर्य समाज में गुरुकुल खोलो, वेद और आर्ष ग्रंथों का पठन पाठन शुरू करो तभी गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्मोत्सव मनाना सार्थक होगा।

आर्य युवा नेता देवेन्द्र आर्य 'आर्यबंधु' विशिष्ठ अतिथि ने कहा कि ऐसे मनीषियों के कारण ही आर्य समाज का प्रचार प्रसार हुआ है।

स्वागताध्यक्ष डा.विकास अग्रवाल (क्षेत्रीय महामंत्री भाजपा पश्चिमी उत्तर प्रदेश) ने कहा कि गुरुदत्त विद्यार्थी का संस्कृत से अद्वितीय लगाव ही युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत है।

इस अवसर पर सर्वश्री महेन्द्र भाई,प्रवीण आर्य आदि ने भी अपने विचार रखे एवं मुख्य रूप से सर्वश्री अशोक कुमार आर्य, सुभाष चन्द आर्य,नरेन्द्र कुमार आर्य, बिजेंद्र कुमार गर्ग,सुरेंद्र कुमार गुप्ता,चमन सिंह शिशोदिया,सुरेश सिंघल,श्रीमती मृदुल अग्रवाल,सुषमा गुगलानी आदि उपस्थिति रहे।

समारोह की अध्यक्षता राष्ट्रीय अध्यक्ष अनिल आर्य ने की व मंच का कुशल संचालन केन्द्रीय आर्य युवक परिषद उत्तर प्रदेश के प्रांतीय अध्यक्ष आनंद प्रकाश आर्य ने किया।समाज के मंत्री संदीप आर्य ने सभी का आभार व्यक्त किया।

इस अवसर पर राष्ट्रीय अध्यक्ष अनिल आर्य ने केन्द्रीय आर्य युवक परिषद उत्तर प्रदेश की नई कार्यकारिणी की घोषणा करते हुए प्रवीण आर्य प्रांतीय अध्यक्ष, अनुपम आर्य प्रांतीय महामंत्री, और डा प्रमोद सक्सैना को प्रांतीय कोषाध्यक्ष मनोनित किया गया।

जिला अध्यक्ष यज्ञवीर चौहान, मंत्री सुरेश आर्य,अमित शर्मा, संदीप आर्य,सौरभ गुप्ता, श्रीमती वीना आर्य,प्रतीभा भूषण,राकेश गुप्ता आदि ने समारोह को सफल बनाने में भरपूर सहयोग किया।

शांतिपाठ एवं ऋषि लंगर के साथ समारोह संपन्न हुआ।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र ०२ व ०६ मई, २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
.....

अर्न्तराष्ट्रीय यज्ञ दिवस पर कुछ चित्र

ओ३म् जप से एकाग्रता और विघ्नों का नाश

-महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

'योगदर्शन' में तो अतिशीघ्र मन की एकाग्रता प्राप्त करने का सरल सीधा साधन ओ३म् का जप और ओ३म् के अर्थ का चिन्तन बतलाया है। 'योगदर्शन' के समाधिपाद में लिखा है: तज्जपस्तदर्थभावनम्। (योगदर्शन १। २८)

'उस ओ३म् का जप और उस ओ३म् के अर्थभूत ईश्वर का पुनः-पुनः चिन्तन करना चाहिये।'

इस ओ३म् का जप तथा ओ३म् के अर्थ-चिन्तन का फल यह लिखा है:

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।। १। २९ ।।

'उक्त स्थान से विघ्नों का अभाव और आत्मा के स्वरुप का ज्ञान भी होता है।'

इतना बड़ा महत्त्व ओ३म्-जप तथा ओ३म् के अर्थो के चिन्तन का है। मन की एकाग्रता को प्राप्त करने के यत्न में जो साधक कटिबद्ध होते हैं, उनके मार्ग में नाना विघ्न भी आकर खड़े हो जाते हैं। उन्हीं विघ्नों की ओर ऊपर के सूत्र में संकेत किया गया है और इससे अगले दो सूत्रों में (३० तथा ३१ में) उन १४ विघ्नों तथा दोषों का वर्णन है जो योगी को सताते हैं। वे ये हैं :

(१) व्याधि शारीरिक रोग, (२) स्त्यान योग-साधनों में प्रवृत्ति न होना, (३) संशय, (४) प्रमाद, (५) आलस्य, (६) अविरतिवैराग्य का अभाव अर्थात् विषयों में आसक्ति, (७) भ्रान्ति-दर्शन मिथ्या ज्ञान और ऊटपटाँग विचार, (८) अलब्ध-भूमिकत्वसाधन करने पर भी कोई स्थिति प्राप्त न होना, अनवस्थितत्त्वज्योतिदर्शन होकर ज्योति का लुप्त हो जाना, (१०) दुःखआध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख, (११) दौर्मनस्य जब इच्छा की पूर्ति न हो तो मन में एक प्रकार की अशान्ति या बेचैनी का होना, (१२) अंगमेजयत्व शरीर के अंगों में कम्पन होना, (१३) श्वास भीतरी कुम्भक में विघ्न होना, (१४) प्रश्वास बाहरी कुम्भक में विघ्न होना।

ये सारे-के-सारे दोष या विक्षेप भी ओ३म् के जप और परमात्म-तत्त्व का चिन्तन और ध्यान करने से दूर हो जाते हैं। 'योग-दर्शन' के बतलाये इस सरल, सुगम, सीधे मार्ग पर चलकर देखिये तो सही कि आपको ध्यान-अवस्था प्राप्त होती है या नहीं।

ओ३म्-जप की महिमा में इतना ही कहना पर्याप्त है कि:

जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिः पुनःपुनः ।
'मन्त्र-जप सर्व सिद्धियों का अचूक मार्ग है।'

ओ३म् का जप ओ३म् का अर्थ समझते हुए जब अनन्य भाव से किया जाय तो मन की चंचलता मिटने लगती है। यह अनुभवसिद्ध तथ्य है कि जिसका स्मरण तथा जप बार-बार किया जाता है, उसके कुछ गुण उपासक में धीरे-धीरे आने लगते हैं। मनोविज्ञान के पण्डितों ने भी ये परिक्षाएँ की हैं और वे बतलाते हैं कि किसी भी बात की सूचनाएँ (Suggestion) बार-बार दुहराने से वे पुष्ट होती जाती हैं और कल्पना विश्वास के रुप में परिवर्तित होकर मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही हो जाता है। साधक जब ओ३म् का जप करता है और वह अन्तःकरण से अनुभव करता है कि यह ओ३म् पवित्र है, निश्चल है तो साधक के अन्दर पवित्रता आने लगती है और उसका मन अचल होने लगता है।

'ध्यानबिन्दूपनिषद्' में भी ओंकार (ओ३म् नाम) द्वारा ध्यान-अवस्था में पहुँचने का विधान किया गया है :

ओंकारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः ।
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।।१४।।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।
निवर्तन्ते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।१५।।

'जो ओ३म् को नहीं जानता वह ब्रह्म को नहीं प्राप्त हो सकता। ओ३म् धनुष है, आत्मा स्वयं तीर है, ब्रह्म लक्ष्य है।।१५।।

जैसे एक तीरन्दाज निशाना लगाते समय तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार ओ३म् की उपासना में तन्मय हो जाना चाहिये। ओ३म् के अतिरिक्त और कोई संकल्प-विकल्प चित्त में न आने पाय, फिर जीवात्मा ब्रह्म को प्राप्त हो जायेगा।' ।।१५।।

यही बात 'प्रश्नोपनिषद्' के ५वें प्रश्न में अधिक सुन्दरता से बतलाई गई है, वह प्रसंग 'प्रश्नोपनिषद्' से पढ़ना चाहिये।

शोक समाचार

● आर्य समाज बिसवाँ, सीतापुर के सदस्य श्री राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव का देहान्त दिनांक ०५ मई, २०२४ को हो गया।

स्व.राजेन्द्र प्रसाद जी आर्य समाज के प्रति निष्ठावान व समर्पित कार्यकर्ता थे उनके निधन से आर्य समाज की अपूर्णनीय क्षति हुई है। जिसकी पूर्ति असम्भव है।

● आर्य समाज चौक प्रयागराज के पूर्व प्रधान व वरिष्ठ सदस्य श्री जितेन्द्रनाथ जायसवाल का आकस्मिक निधन दिनांक ०७ मई को प्रातः हो गया।

स्व. जितेन्द्र नाथ जायसवाल के निधन से आर्य समाज ने एक सरल सुहृदय ऋषि भक्त को खो दिया है। उनकी स्मृति में शांति यज्ञ व श्रद्धांजलि सभा का आयोजन दिनांक ०६ मई, २०२४ को सायं स्थान-सत्यम होटल, मोती महल, हीवेट रोड, प्रयाग में किया गया। जिसमें आर्य जनों, पारिवारिक सदस्यों व गणमान्य लोगों ने अपने अपने श्रद्धासुमन अपने भावों के द्वारा व्यक्त किये। आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के मंत्री श्री पंकज जायसवाल जी ने भी अपनी भाव पूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा व समस्त पदाधिकारीगणों ने दिवंगत आत्माओं को शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए, ईश्वर से उनकी सद्गति व परिजनों को धैर्य प्रदान करने की प्रार्थना की है।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।